भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ

1939 में स्थापित भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता में, शिक्षा के माध्यम से अभिवृद्धि करना है, जिसे यह निरन्तर एवं आजीवन प्रक्रिया के रूप में देखता है। संघ प्रौढ़ शिक्षा को एक प्रक्रिया, कार्यक्रम और आन्दोलन के रूप में गतिशील बनाने की दिशा में प्रतिबद्ध है।

संघ प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार में कार्यरत स्वंयसेवी संगठनों, विश्वविद्यालयों, शासकीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के कार्यकलापों से समन्वय करता है। संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों का आयोजन और प्रौढ़ शिक्षा के विभिन्न आयामों पर निरंतर सर्वेक्षण तथा शोध के साथ, संघ अपने सदस्यों की प्रौढ़ शिक्षा विषयक जानकारी में नवीनता एवं प्रखरता बनाए रखने के लिए समूचे विश्व में अद्यतन विचार और अनुभव प्रस्तुत करने का निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्रों में अनुसंधान हेतु विभिन्न प्रयोगात्मक परियोजनाएं भी संचालित करता है। अपनी नीतियों के अनुसरण में संघ ने 'नेहरू साक्षरता पुरस्कार' एवं महिलाओं में निरक्षरता निवारण कार्य हेतु 'टैगोर साक्षरता पुरस्कार' की स्थापना की है। डा. जाकिर हुसैन स्मृति व्याख्यान प्रतिवर्ष किसी मूर्धन्य शिक्षाविद् द्वारा दिया जाता है। संघ हिन्दी एवं अंग्रेजी शोध कार्य के लिए डा. मोहन सिंह मेहता फेलोशिप भी प्रदान करता है।

संघ का अमरनाथ झा पुस्तकालय प्रौढ़, सतत् और जनसंख्या शिक्षा की सन्दर्भ सामग्री की दृष्टि से देश में अद्वितीय है। विविध सन्दर्भ पुस्तकों के संकलन के अतिरिक्त देश और विदेश से प्रकाशित प्रौढ़ शिक्षा संबंधी पत्र–पत्रिकाएं, सूचना एवं संदर्भ सामग्री भी इसमें उपलब्ध है। संघ, नेशनल इन्फार्मेटिक सेण्टर इंडिया इण्टरनेशनल सेंटर द्वारा प्रायोजित डेलनेट से भी सम्बद्ध है। संघ द्वारा अभी हाल में प्रौढ़ एवं जीवनपर्यन्त अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान (इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एडल्ट एंड लाईफलॉंग एजूकेशन) की स्थापना भी कर दी गई है।

संघ प्रौढ़ शिक्षा विषय पर अनेक पुस्तकें व पत्रिकाएं प्रकाशित करता हैं, जो कि मुख्यतः प्रौढ़ शिक्षा कर्मियों और नवसाक्षरों के लिए है। संघ 'इण्टरनेशनल फेडरेशन आफ वर्कर्स एजूकेशनल एसोसिएशन्स' एवं 'एशियन साउथ पेसेफिक ब्यूरो आफ एडल्ट एजूकेशन' एवं 'इण्टरनेशनल कौंसिल आफ एडल्ट एजूकेशन' से भी सम्बद्ध है। संघ की सदस्यता उन सभी व्यक्तियों एवं संस्थाओं के लिए खुली है जो इसके आदर्शों एवं लक्ष्यों में विश्वास रखते हैं।

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ

17–बी इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, महात्मा गांधी मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाषः 011–23379282, 23378436, 23379306
फैक्सः 011–23378206, ई–मेलः proudhshiksha@gmail.com
directoriaea@gmail.com
website: www.iaea-india.org; www.iiale.org

प्रौढ़ शिक्षा

मई 2010
वर्ष 53 अंक–10

सम्पादक मण्डल

संरक्षक
प्रो. भवानी शंकर गर्ग

अध्यक्ष
कैलाश चौधरी

इन्दिरा पुरोहित
ए.एच.खान
प्रफुल्ल नागर
के.आर. सुशीले गौडा
डा. विद्याविन्दु सिंह
डा. मदन सिंह

सहायक सम्पादक
बी. संजय

टंकण एवं रूपसज्जा
कृष्ण सिंह

इस अंक में

सम्पादकीय 2

एनीमिया के प्रति महिलाओं की जागरूकता का अध्ययन
– रेनू गौतम 3

दुनिया में शिक्षा–क्रांति
– रमेश दवे 12

बुनियादी शिक्षा पर प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह द्वारा राष्ट्र को संबोधन 20

दायित्व हीनता
– विमला लाल 22

धूम्रपान का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव
– शिव प्रकाश कटियार 26

कोपेनहेगन : धरती बचाने की एक पहल
– संगीता पवार 32

बंधुआ मजदूरी का बदलता चेहरा
– देवाशीष प्रसून 35

A Step Towards a Unique Identity for All
– Veena N. Madhavan 38

मूल्यः 100 रूपये वार्षिक

पत्रिका में व्यक्त लेखकों के विचार उनके वैयक्तिक विचार हैं जिनसे संघ एवं सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है ।

सम्पादकीय

जब गांधी का स्मरण हो आया

निर्णय सही है या गलत इसका परीक्षण करने के लिए महात्मा गांधी ने भावी पीढ़ियों के नाम एक ताबीज सौंपा था। उनका कहना था कि अपने निर्णय के प्रति यदि आप असमंजस में हैं तो आप उस सबसे गरीब महिला का चेहरा याद कीजिए जिसे आपने अपने जीवन में कभी देखा हो और फिर स्वयं से प्रश्न कीजिए कि आपके द्वारा लिया गया निर्णय अथवा उठाया गया कदम उस महिला के जीवन में कोई आशा की किरण जगा सकता है? यदि हां तो निर्णय सही है और यदि नहीं तो निर्णय गलत।

जाने कितने लोगों ने कितनी बार कितने विविध रूपों में गांधी के इस प्रसिद्ध कथन का अपने–अपने ढंग से उपयोग किया होगा। पर क्या सचमुच हम इस कथन को अपने व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनैतिक अथवा राष्ट्रीय जीवन में आत्मसात कर पाये? सवाल खड़ा है। हम इस प्रश्न को नजरअंदाज कर सकते हैं, इससे कतरा सकते हैं, शुर्तुमुर्ग की भांति अपनी आंखें बंद कर स्वयं के अबोध होने का भान कर सकते हैं? पर गांधी का वह प्रश्न फिर भी खड़ा ही रहेगा। संभव है यह हर चिंतनशील नागरिक, बुद्धिजीवी, विचारक, योजनाकार अथवा राजनेता के अंतस को सालता भी रहे। खासतौर पर तब जब गरीब व वंचित लोग उजड़ते नजर आएं। कही कोई किसान ऋृण न चुका पाने के कारण आत्महत्या कर ले, समाज का कोई बड़ा तबका सरकार के ही किसी निर्णय का शिकार हो विस्थापित आबादी में तबदील हो जाय, न्यूनतम स्वास्थ्य सेवाओं अथवा अन्न के अभाव में उसकी जान चली जाए। स्वाभाविक है समाज को, विशेषतः जागरूक वर्ग को सोचना ही होगा और गांधी के उस प्रश्न के आइने में अपना चेहरा देखना होगा।

पर हाल के दौर में गांधी के इस कथन या यंत्र को एक अलग तरीके और संदर्भ में देखे जाने अथवा प्रयोग किए जाने की आवश्यकता महसूस होती है। वह है राष्ट्रीय एकीकरण के परिप्रेक्ष्य में। क्या आज यह सोचने की जरूरत नहीं है कि हमारे हर कदम से विकास की बयार तो बहे पर इसकी ओट में हम ऐसे सवाल न खड़ा कर दें जो हमारी सामाजिक संरचना अथवा राष्ट्रीय ताने–बाने को तोड़ने या उसे किसी भी प्रकार से विकृत करने का उपक्रम बन सकता है? अभी कुछ समय पहले की ही बात है कि सेनाओं में जाति के आधार पर गणना करने के सवाल पर बवाल खड़ा हुआ था। सरकार ने उसे बड़ी संजीदगी से लिया था एवं आम सहमति के माध्यम से देश को एक बड़ी आसन्न समस्या से निजात दिलाया था। अब जाति आधारित जनगणना का सवाल उठ खड़ा हुआ है और वह भी विकास के मद्देनजर उठाया जा रहा है।

स्वाधीनता सेनानियों, संविधान के रचनाकारों और सामाजिक तथा राष्ट्रीय उत्थान के पुरोधाओं की कल्पना और तपस्या तो जाति संस्था के वर्गीकरण और उसके परिणामस्वरूप उभरे सामाजिक वैमनस्य से राष्ट्र को निजात दिलाने की थी। अब स्वाधीनता के सातवें दशक में आ हम सजग होने का दावा करते हुए इस दौर के सबसे प्रमुख सरोकार 'विकास' की ओट में वही सवाल उठाना चाहते हैं, उसी पौधे को पुनः सींचना चाहते हैं जो संभवतः राजनैतिक रोटी गर्म कराने के अलावा कोई लाभप्रद परिणाम न दे, तो घोर आश्चर्य होता है। ऐसे में पुनः गांधी का स्मरण हो आता है। क्या आज का ध्येय वाक्य यह नहीं होना चाहिए कि हम अपने किसी भी विचार या पहल को इस कसौटी पर तोलने की कोशिश करें कि यह हमारी राष्ट्रीय अंखडता और सामाजिक संरचना के वटवृक्ष पर कुठाराघात करेगा अथवा उसके जड़ों को सींचता हुआ उसे मजबूत करेगा। विकास कार्यक्रमों के संचालन के लिए आकड़ों की अनिवार्यता सर्वमान्य है पर इन्हें एकत्रित करने की प्रणाली भी अनिवार्य रूप से विवाद रहित होनी चाहिए। आज के हालात में सम्भव है इसे समीचीन चिन्तन मान लिया जाए।

बी.संजय

एनीमिया (रक्त अल्पता) के प्रति महिलाओं की जागरूकता का अध्ययन

रेनू गौतम

स्वस्थ जीवन व्यतीत करना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। व्यक्ति का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर कैसा भी क्यों न हो, आहार, पोषण एवं स्वच्छता उसके स्वास्थ्य के आधार होते हैं। स्वास्थ्य का सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है, जिसके द्वारा मनुष्य अपनी समस्याओं का समाधान करता है। दूसरी ओर भोजन एवं शुद्ध पानी जीवन की आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति करना आवश्यक है। अतः भोजन एवं आहार ऐसा होना चाहिए जिसमें स्वस्थ रहने के लिए सभी पौष्टिक पदार्थ विद्यमान हों। पौष्टिक भोजन शरीर की वृद्धि करने, उसकी क्षति पूर्ति करने एवं रोगों से बचाने में भी समर्थ होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति उन पदार्थों से होती है जो पोषक तत्व कहलाते हैं। शिशु से लेकर वृद्धि व्यक्ति के लिए पोषक तत्वों को ग्रहण करना आवश्यक होता है। हम जो भोजन ग्रहण करते हैं, उसका हमारे स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध होता है। इसलिए स्वस्थ शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए भोजन में आवश्यक पोषक तत्व संतुलित अनुपात में होने चाहिए।

स्वस्थ शिशु के लिए स्वस्थ मातृत्व का होना भी आवश्यक है। विकासशील एवं अल्प विकसित देशों में निरक्षरता एवं गरीबी के कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हो रही है। परिणामस्वरूप व्यक्ति को हर प्रकार की सुविधायें व संसाधन समुचित रूप से नहीं मिल पा रहे हैं, जिससे जनसंख्या एवं उत्पादनों के साधनों में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप पर्यावरण, आर्थिक विकास, सामाजिक सुविधायें तथा देश का विकास प्रभावित होता है एवं निरक्षरता, गरीबी, कुपोषण, कमजोर स्वास्थ्य एवं महिलाओं में रक्त हीनता जैसी समस्यायें उत्पन्न होती हैं।

दूसरी ओर ऐसे देश हैं जिनकी आबादी कम दर से बढ़ रही है, वहां के लोगों की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी है। ऐसे देशों में साक्षरता अधिक, शिशु मृत्यु दर कम, पौष्टिकता का स्तर ऊँचा है। महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। महिलायें अधिक शिक्षा पाती हैं, स्कूल में अधिक समय तक शिक्षा लेती हैं व देर से शादी करती हैं। उनके बच्चे भी कम होते हैं व मरते भी कम हैं।

विकासशील देशों में जहां पर आबादी अप्रत्याशित रूप से बढ़ रही है उन देशों में उच्च शिशु मृत्यु दर, गरीबी, निरक्षरता, कुपोषण के अतिरिक्त महिलायें अनचाहे गर्भ धारण कर रही हैं। परिणामस्वरूप उच्च शिशु मृत्यु दर को बढ़ावा मिलता है और बार–बार गर्भधारण करना महिला के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर डालता है। ऐसी स्थिति गरीब एवं निरक्षर महिलाओं में अधिक पायी जाती है। बार–बार गर्भ धारण करने के कारण महिला कुपोषण की शिकार हो जाती हैं तथा उससे जन्म लेने वाले बच्चे भी कुपोषित ही पैदा होते हैं जो शिशु मृत्यु दर को बढ़ावा देते हैं। यही कारण है कि अधिक शिशु मृत्यु दर के कारण अगले बच्चे का जन्म होता है जिसका मुख्य कारण

प्रथम बच्चे की जीने की कम संभावना का होना है। ऐसे परिवारों की महिलाओं को स्वच्छ पानी, सफाई की सुविधायें, भोजन एवं रहने के लिए स्थान, शिक्षा चिकित्सा सेवायें पूरी करना समस्या बनी रहती है। जिसके कारण बहुत सी महिलाओं की मृत्यु गर्भावस्था के दौरान या प्रसव के दौरान हो जाती है, जिसके कारण महिलाओं में होने वाली रक्त हीनता की बीमारी है। रक्तहीनता अधिकांशतः गर्भ धारण करने वाली महिलाओं में होती है क्योंकि इस दौरान मां एवं गर्भ में पल रहे बच्चे दोनों के लिए समुचित आहार एवं उचित देखभाल की आवश्यकता होती है क्योंकि मां के द्वारा जो भी भोजन ग्रहण किया जाता है उसी से गर्भ में पल रहे शिशु की वृद्धि के लिए पोषक तत्व मिलते हैं यदि इस अवस्था में गर्भवती महिला को समुचित पोष्टिक आहार नहीं मिलता है तो ऐसी स्थिति में गर्भ में पल रहे शिशु को समुचित विकास के लिए पोष्टिक तत्व नहीं मिल पाते हैं। जिसका मुख्य कारण महिला में रक्त हीनता (एनीमिया) का होना है। एनीमिया होने के कारण मां को पूर्ण रूप से आहार का न मिलना ही है जिसके द्वारा मां व बच्चे दोनों की पूर्ति नहीं हो पाती है। परिणामस्वरूप महिला एनीमिया से ग्रस्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में कभी–कभी प्रसव के दौरान महिला की मृत्यु होने की संभावनायें होती हैं।

रक्त हीनता अत्यन्त ही व्यापक रूप से प्रचलित भारतीय रोगों में से एक है। विकासशील देशों में तो एनीमिया जन स्वास्थ्य के लिए एक समस्या बनी हुई है। गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माता, शिशु तथा बच्चे बड़ी शीघ्रता से इस रोग के शिकार हो जाते हैं, जिससे व्यक्ति कमजोरी, सिर में दर्द, भूख में कमी, अपच जैसे लक्षण महसूस करने लगते हैं, परिणाम स्वरूप रक्तहीनता हो जाती है। लोहे की कमी के कारण होने वाले एनीमिया रोग को हायपोक्रोमिक एनीमिया कहते हैं। इसका अर्थ है कोशिकाओं का छोटे आकार का होना है यह एनीमिया मुख्य रूप से पोषिकीय कमी के कारण से होते हैं। विटामिन 'बी' एवं प्रोटीन की कमी होने के कारण भी इस प्रकार का एनीमिया हो जाता है।

रक्तहीनता से ग्रस्त व्यक्ति के लिए एक बार उपचार हो जाने के बाद यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके आहार में जहां तक लौह तत्व का सम्बन्ध है पर्याप्त मात्रा में सुधार हो जिससे वे हीमोग्लोबीन का वांछित स्तर बनाये रख सकें।

प्रस्तुत अध्ययन क्रियात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत किया गया जिसमें यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया कि महिलाओं में रक्त अल्पता के प्रति जानकारी का स्तर क्या है और शिक्षित तथा निरक्षर/नवसाक्षर महिलाओं में क्रियात्मक जानकारी का स्तर क्या है जिससे भविष्य में उक्त क्षेत्र में महिलाओं को सही जानकारी दी जा सके।

उद्देश्य

शिक्षित एवं निरक्षर/नवसाक्षर महिलाओं की रक्त अल्पता के प्रति जागरूकता का स्तर ज्ञात करना।

सीमांकन

(अ) प्रस्तुत अध्ययन में कीर्तिनगर विकासखण्ड, टिहरी (गढ़वाल) उत्तराखण्ड क्षेत्र की 20–45 आयु समूह की ग्रामीण महिलाओं को सम्मिलित किया गया।

(ब) प्रस्तुत अध्ययन में शिक्षित एवं निरक्षर/नवसाक्षर ग्रामीण महिलाओं को सम्मिलित किया गया।

न्यादर्श

(अ) अध्ययन के लिए क्षेत्र के रूप में सौद्देश्य न्यादर्श (Purposive Sampling) के द्वारा कीर्तिनगर विकासखण्ड, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड को चयनित किया गया।

(ब) अध्ययन के लिए अध्ययन क्षेत्र से यादृच्छिक न्यादर्श (Random Sampling) के आधार पर 50 शिक्षित एवं 50 निरक्षर/नवसाक्षर ग्रामीण महिलाओं को चयनित किया गया।

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन के लिए आंकड़ों के संग्रह हेतु अनुसूची (Schedule) निर्मित की गयी, जिसमें 15 कथनों को प्रश्न के रूप में रखा गया।

आंकड़ों का विश्लेषण

सारणी संख्या–1

कथन – रक्त हीनता की क्या पहचान है?

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	30	60	15	30
गलत	20	40	35	70
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 1 के प्रति मात्र 60 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 30 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–2

कथन – रक्त हीनता भोजन में तत्वों की कमी के कारण होता है।

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	35	70	10	20
गलत	15	30	40	80
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 2 के प्रति मात्र 70 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 20 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–3

कथन – रक्त हीनता की बीमारी पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं को अधिक क्यों होती है?

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	40	80	20	40
गलत	10	20	30	60
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 3 के प्रति 80 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 20 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–4

कथन – रक्त हीनता से ग्रसित महिला की होने वाली संतान पर क्या प्रभाव पड़ता है।

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	28	56	14	28
गलत	22	44	36	70
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 4 के प्रति 56 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 28 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–5

कथन – स्तनपान कराने वाली माता को रक्तहीनता कब हो सकती है।

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	42	84	18	36
गलत	8	16	32	64
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 5 के प्रति 84 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 36 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–6

कथन – रक्त हीनता से ग्रस्त माता से शिशु पर क्या प्रभाव पड़ता है।

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	30	60	15	30
गलत	20	40	35	70
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 6 के प्रति 60 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 30 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–7

कथन – रक्त हीनता से बचने के लिए महिलाओं को कब–कब जांच करवानी चाहिए?

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	36	72	18	36
गलत	14	28	32	64
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 7 के प्रति 72 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 36 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–8

कथन – रक्त हीनता को बढ़ने से कैसे रोका जा सकता है?

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	24	48	12	24
गलत	26	52	38	76
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 8 के प्रति 48 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 24 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–9

कथन – रक्त हीनता मुख्यतः किस उम्र में अधिक होती है?

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	38	76	22	44
गलत	12	24	32	64
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 9 के प्रति 76 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 44 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–10

कथन – घर के सदस्य को रक्तहीनता की बीमारी होने पर उपचार हेतु कहां ले जाना चाहिए?

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	37	74	16	32
गलत	13	26	34	68
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 10 के प्रति 74 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 32 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–11

कथन – रक्तहीनता के बढ़ने से उत्पन्न समस्यायें क्या–क्या हैं?

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	35	70	12	24
गलत	15	30	38	76
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 11 के प्रति 70 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 24 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–12

कथन – बार–बार गर्भधारण करने पर महिला पर स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है।

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	30	60	32	64
गलत	20	40	18	36
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 12 के प्रति 64 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 60 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–13

कथन – गर्भधारण के दौरान रक्त हीनता से बचने के लिए कौन सी गोलियां खायीं जाती हैं?

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	42	84	18	36
गलत	8	16	32	64
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 13 के प्रति 84 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 36 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–14

कथन – गर्भवती महिलाओं को खून की कमी से बचने के लिए किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	36	72	38	76
गलत	14	28	12	24
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 14 के प्रति 72 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 76 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

सारणी संख्या–15

कथन – गर्भवती महिलाओं को टिटनेस के टीके कब लगवाने चाहिए?

उत्तर	शिक्षित महिलायें		निरक्षर/नवसाक्षर महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सही	40	80	31	62
गलत	20	20	19	38
योग	**50**	**100**	**50**	**100**

कथन 15 के प्रति 80 प्रतिशत शिक्षित महिलाओं को जानकारी थी जबकि निरक्षर समूह में मात्र 62 प्रतिशत महिलाओं को जानकारी थी।

निष्कर्ष

एनीमिया (रक्त अल्पता) के प्रति शिक्षित एवं निरक्षर/नवसाक्षर ग्रामीण महिलाओं की जागरूकता के अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुये कि 13 कथनों के प्रति शिक्षित महिलाओं की जागरूकता अधिक थी जबकि मात्र 2 कथनों (12 एवं 14) बार–बार गर्भधारण करने पर महिला के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव और गर्भवती महिलाओं को खून की कमी के बचने के लिए किन बातों का ध्यान रखना चाहिए, के प्रति निरक्षर/नवसाक्षर महिलाओं की जागरूकता का स्तर अधिक था।

सुझाव

उक्त अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि शिक्षित महिलाओं की तुलना में निरक्षर/नवसाक्षर महिलाओं में रक्त अल्पता से सम्बन्धित जानकारी का स्तर कम था, महिलाओं में रक्त अल्पता के मुख्य कारण गरीबी, बड़ा परिवार, जागरूकता की कमी, पोषक तत्वों की जानकारी का न होना आदि था। शैक्षिक कार्यक्रमों एवं प्रसार शिक्षा के द्वारा ग्रामीण समुदाय के मध्य रक्त अल्पता दूर करने का सही प्रयास महिलाओं में जागरूकता उत्पन्न करना है जिससे उनमें ज्ञानात्मक परिवर्तन हो सके और वे स्वयं तथा बच्चों को रक्त अल्पता से बचा सकें।

❍❍❍❍❍

दुनिया में शिक्षा–क्रांति

(बच्चों का शिक्षाशास्त्र)

रमेश दवे

इटली कैसे बदली ?

इटली का एक पहाड़ी गांव है बारबियाना। यहां आठ बरस से लेकर पन्द्रह बरस तक के ये ग्रामीण बच्चे आवारा घूमते थे। जंगल से लकड़ी काटते थे और अपनी जीविका के लिए काम खोजते थे। एक दिन उन्हें एक पादरी मिला। उसने पूछा तुम पढ़ते क्यों नहीं। बच्चों ने कहा, हमें स्कूल से निकाल दिया गया है। पादरी ने कहा, अगर तुम पढ़ना चाहो तो बिना स्कूल के भी मैं पढ़ाऊंगा? बच्चे तैयार हो गये। पादरी ने बड़े अनौपचारिक ढंग से पढ़ाई शुरू की। उनसे कहा कि तुम्हें स्कूल से क्यों निकाला गया, सारी बातें अपनी–अपनी कॉपियों में लिखो और अगर लिख नहीं सकते तो बोलो, मैं लिखूंगा। बच्चों ने अपनी कहानी कही।

पादरी ने बच्चों की ऐसी कहानियां उनके ही शब्दों में एकत्रित करके एक किताब छपाई। यह किताब पत्र शैली में थी इसलिए इसका अंग्रेजी नाम 'लेटर' रखा गया। इसका अनुवाद 'गुरूजी के नाम पत्र' या 'बारबियाना के स्कूल का गुरूजी के नाम पत्र' के शीर्षक से छपा है। इस पुस्तक में बच्चों ने पाठ्यक्रम, टाइम–टेबल, परीक्षा, भाषा, गणित, इतिहास आदि अनेक बातों को लेकर स्कूल से प्रश्न किये हैं। बच्चे टीचर से कहते हैं, टीचर, यह जो कलम हैं न आपके हाथ में, इसे फेंक दीजिए। आप हमें छड़ी से भले ही पीट लें। छड़ी का निशान तो मिट जाएगा, मगर यह कलम जो हमारे जीवन पर पास–फेल का निशान बना देती है वह निशान कभी नहीं मिटेगा। इस किताब की सारी दुनिया में बड़ी चर्चा हुई। यहां तक कि इस पर ब्रिटिश संसद में चर्चा की गई और बच्चों का शिक्षाशास्त्र कहकर इन आठ बच्चों को बधाई दी गई। बच्चों की कहानी के कुछ नमूने –

हमारे लिए पीटी का घण्टा क्यों ?

हमारे स्कूल में एक पाठ्यक्रम और एक टाइम टेबल होता है। अब देखिये न, लोग कैसा पाठ्यक्रम बनाते हैं। वे पहला घण्टा पीटी और ड्रिल का रखते हैं। हम तो गांव से चलकर, पहाड़ उतर कर आते हैं। जंगल से लकड़ी काट कर घर ले जाते हैं। मेहनत – मजदूरी करते हैं। अब हमारे लिए पीटी का घण्टा क्यों? पीटी तो उन लोगों के लिए हो जो कारों से स्कूल आते हैं और लिट से स्कूल में चढ़ते हैं? है न, यह स्कूल का दिवालियापन!

वक्त की चोरी

एक दिन हमारी टीचर ने हमें एक किस्सा सुनाया। उन्होंने कहा कि उनके पति जज हैं। जज साहब ने एक चोर को छह माह की सजा दे दी। चोर का कुसूर यह था कि उसने आठ प्याज चुराये थे। अब हमारा सवाल यह है कि हमारी टीचर जो स्कूल में लेट आती हैं, धूप में बैठकर स्वेटर बुनती हैं या बतियाती हैं, वह जो हमारे वक्त की चोरी रोज करती हैं, उसके लिए उन्हें सजा कौन–सा जज देगा?

हम बनाते हैं भाषा

हमारी टीचर कहती हैं हमें भाषा नहीं आती। हमारा कहना है हम गरीब ही तो भाषा बनाते हैं। हमारी भाषा को लच्छेदार मुहावरों में बदलकर, अच्छी भाषा के नाम पर आप सब मिलकर क्या हमारा शोषण नहीं करते? हमें भाषा न आने के नाम पर आप गंवार कहते हैं मगर जब आप हमें गालियां देते हैं, हमारे गांव, मां–बाप, हमारे घर–बार सबको कोसते हैं तो क्या वह अच्छी भाषा है? आप बच्चों की भाषा जानते नहीं, न बच्चों की भाषा में बोलते–बातें करते हैं, न बच्चों की भाषा में पढ़ाते–लिखाते हैं और कहते हैं हमें भाषा नहीं आती? हमारी भाषा में एक बार तो आकर देखो, आप अपनी भाषा भूल जाओगे।

स्कूल कौन है?

हमारी टीचर कहती है यह स्कूल है। यह हमारा स्कूल है। यह सरकार का स्कूल है। हम पूछते हैं टीचर, स्कूल कौन है? क्या यह भवन स्कूल है, इसकी दीवारें स्कूल हैं, आप स्कूल हैं? अरे, हम बच्चे ही तो स्कूल हैं, अगर हम न होंगे तो स्कूल कहां होगा? फिर आप हमें पढ़ाती क्यों नहीं? हमसे प्रेम क्यों नहीं करतीं? क्या स्कूल बच्चों से प्रेम छीनकर डर पैदा करने के लिए है? हमें ऐसा स्कूल नहीं चाहिए।

अमेरिका : क्या बच्चे हैं काले–गोरे

अमेरिका की काली बस्ती के बच्चे हैं, जो गलियों में, सड़कों और फुटपाथों पर खेलते और जीते हैं। बच्चे स्कूल जाते हैं। काले बच्चों के साथ जो सलूक होता है वह अत्यंत ही अमानवीय है। गोरे शिक्षक बच्चों से तरह–तरह के काम लेते हैं, मारपीट करते हैं, पढ़ाते कम और काम ज्यादा लेते हैं। जार्ज डेनीसन ने इन बच्चों का अध्ययन किया। इनपर एक किताब लिखी 'बच्चों का जीवन'। पहला ही प्रश्न किया एक विशाल शिक्षक समूह के बीच। पूछा – 'आप किसे पढ़ाते हैं?' सभी शिक्षकों का कहना था – 'बच्चों को'। डेनीसन ने कहा – 'यह गलत है। आप बच्चों को पढ़ाते ही नहीं। आप तो पाठों को पढ़ाते हैं, पाठ्यक्रम पढ़ाते हैं। बच्चों को पढ़ाते होते तो बच्चों और आपके

बीच ऐसा सम्बन्ध नहीं होता।' सचमुच अधिकांश शिक्षक पाठों को ही पढ़ाते हैं, बच्चों को नहीं।

संगीत और शोर में फर्क

एक कल्पनाशील शिक्षक ने शिक्षकों के एक समूह ने पूछा – 'संगीत और शोर में क्या अंतर है?' शिक्षकों का उत्तर – 'संगीत मधुर होता है, शोर कर्ण–कटु। संगीत में लय, ताल, स्वर आदि होते हैं, शोर में ऐसा कुछ नहीं होता। संगीत से पर्यावरण अच्छा होता है, शोर से पर्यावरण प्रदूषित होता है। संगीत मन को भाता है मन को रचता है।' बच्चा बोला, 'सर, जब स्कूल में आने की घण्टी बजती है तो वह शोर होता है और जब छुट्टी की घण्टी बजती है तो वह संगीत जैसी लगती है।' आने की घण्टी को संगीत की घण्टी में कैसे बदला जाए?

जापान की प्यारी तोतो चान

तोतो चान जापानी लड़की है। उसकी उम्र सात साल है। वह दिनभर अपने घर की खिड़की में खड़ी रहती है। यह आदत उसे 2–3 बरस की उम्र से है। रास्ते से जो कोई गुजरता है, उन्हें आवाज देकर वह उनसे बतियाती है। पुलिस या फौज के सिपाही परेड करते निकलते हैं तो वह हंसती है, कहती है – 'इन्हें शायद चलना नहीं आता होगा तो चलना सिखाया जा रहा है।' लोगों से बात करते–करते उसके पास ज्ञान का विशाल भण्डार हो जाता है। अब सात साल की उम्र होने पर उसकी मां उसे स्कूल में भरती कराने जाती है। वह जिस स्कूल में जाती है, वहां की टीचर से इतने सवाल करती है कि सवाल सुन–सुन कर शिक्षक तंग आ जाते हैं और मां से कह देते हैं कि बच्ची को यहां से ले जाओ। यह हमारा स्कूल बिगाड़ रही है। मां ने करीब सात स्कूल छोड़े और अन्त में वह उसे अलग ही तरह के स्कूल में ले गई। वह स्कूल रेल की परित्यक्त या छोड़ी हुई बोगियों में एक महिला चलाती थी। उसका नाम था तेत्सुका कुरोयांगी। जब तोतो वहां पहुंची तो रेल में स्कूल देखकर जिज्ञासा और आनन्द से भर उठी। वह दौड़ कर स्कूल में दाखिल हो गयी। प्रधान अध्यापिका से सवालों की झड़ी लगा दी। प्रधान अध्यापिका भी हर सवाल का हंस–हंस कर जवाब देती रही। बच्ची रेल में दौड़ लगाने लगी। ऊपर–नीचे सीटों पर कूदने–उछलने लगी। यह उसके तमाम अनुभवों में एकदम नयी चीज थी। उसे जब यह कहा गया कि तुम पहाड़ खाओगी, या समुद्र, तो वह यह सुनकर चौंक पड़ी। उसे लगा क्या पहाड़ और समुद्र भी खाये जा सकते हैं! यह उसके अनुभव में दूसरा नयापन था। जब खाना परोसा जा रहा था तो तोतो ने देखा कि जो पहाड़ खा रहे थे, उन्हें आलू परोसा जा रहा था और समुद्र खा रहे थे उन्हें मछली। अब तोतो ने अपने आप मतलब निकाल लिया कि आलू पहाड़ पर पैदा होता है और मछली समुद्र में..... और वह उछल पड़ी! मां से कहने लगी, 'ममा, यह स्कूल तो मेरी पसन्द का स्कूल है। यहां तो सब कुछ नया–नया है। मैं अब यहीं रहूंगी।' इस छोटी–सी बच्ची ने जापान की शिक्षा को हिलाकर रख दिया।

और अन्त में जापान की सरकार ने तोतो चान जैसी लड़की के अनुभवों का स्कूल बनाने का फैसला लिया। साम्राज्यवादी शिक्षा से स्कूल को निकाल कर इस बच्ची की वजह से जापान ने स्कूल का जो नया मॉडल रचा वह जॉयफुल स्कूलों के रूप में सारी दुनिया में छा गया।

इंग्लैंड : शिक्षा के साम्राज्यवाद से छुटटी

यह कहानी एक आधुनिक समरहिल स्कूल की कहानी है जो 1921 में इंग्लैंड के लाइस्टन गांव में ए.एस. नील ने बनाया था। इस स्कूल में बच्चों का लोकतंत्र कायम किया गया। यहां का हर काम बच्चे ही अपने आत्मनिर्णय से करते थे। इसके पीछे मान्यता यह थी कि बचपन की स्वाभाविक रूचियों के दमन से मनुष्य में आगे चलकर कुण्ठाएं, नफरत और क्रूरताएं पैदा होती हैं जो अंततः युद्धों और महाविनाशों की तरफ ले जाती हैं। बचपन की चिन्ता न करने से आगे के जीवन में चिन्ताएं ही चिन्ताएं पैदा हो जाती हैं। नील ने बच्चों के साथ रहकर जो काम किया, और चालीस साल तक जो अनुभव हासिल किया उसे 'समरहिल स्कूल' नामक किताब में लिखकर बता दिया कि बच्चों का लोकतंत्र कैसा हो। स्वशासन, शिष्टाचार, सहशिक्षा, काम, खेल, नाटक, संगीत–धर्म, सेक्स, भय, हीन–भावना, कल्पनालोक, झूठ, आज्ञापालन, सजा, खिलौने, गालियां चोरी–ऐसा कोई विषय नहीं था जिसे लेकर बच्चे स्वयं नहीं सोचते, स्वयं हल नहीं निकालते और स्वयं के निर्णय से खराब और अच्छे को तय नहीं करते। बच्चे अपनी संसद बनाते, बच्चे अपना कार्यक्रम तय करते, बच्चे अपना पाठ्यक्रम सीखने की प्रणाली, परीक्षा आदि सब कुछ तय करते, चलाते और शिक्षक केवल मददगार होते। बच्चों की यह आजादी जो स्कूल ने रची, उसी ने आगे चलकर अफ्रीका में आजादी का जोश जगाकर उपनिवेशवाद से मुक्ति हासिल करवाई। समरहिल स्कूल वह स्कूल था जहां बच्चों का ऐसा लोकतंत्र था जिसने प्रौढ़ों के साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को उखाड़ फेंका। पूर्व सोवियत संघ और यूरोप के कई देशों ने समरहिल में पढ़कर स्कूल के लोकतंत्र के जरिये यूरोप के स्कूलों की छवि ही बदल दी और स्कूल बाल–केन्द्रित बन गये।

मां–बाप की गोद की तरह हों स्कूल

एक सोलह महीने की बच्ची पिता की गोद में बैठी है। वह कभी पिता के कमीज के बटन से खेल रही है तो कभी पिता की जेब में रखे कलम से। वह एक दिन पिता की जेब से कलम निकालती है। उसे फिर लगाना चाहती है, नहीं लगा पाती। दूसरे दिन फिर वही काम करती है, तीसरे दिन भी वही। अन्त में एक दिन वह कलम निकाल कर पुनः जेब में लगा देने में सफल हो जाती है। सफलता मिलते ही वह बच्ची उछलकर पिता की गोद से बाहर आती है और नाच उठती है। बोलना आता नहीं मगर नाच और खुशी की भाषा में वह जो कहती है वह यह है कि उसने यह काम सीख लिया और उसे उसने दो–तीन बार आजमा कर साबित भी कर दिया कि वह यह

काम करना सीख गई है। इस छोटे से अनुभव को लेकर जान होल्ट ने बच्चों के लिए आठ किताबें लिखीं, जिनमें से 'बच्चे सीखते कैसे हैं', 'बच्चे असफल कैसे होते हैं' ये दो किताबें दुनियाभर में मशहूर हो गयी। बच्चों को घर क्या सिखा सकता है, कैसे सिखा सकता है इसे लेकर 'होम स्कूलिंग' की अवधारण भी पैदा हो गयी जो आज सारी दुनिया में आजमाई जा रही है। होल्ट का कहना है कि अगर कोई स्कूल बच्चों के सीखने के लिए ऐसी जगह हो जैसी मां या पिता की गोद होती है, जहां बच्चे के हाथ में गेंद हो या खिलौने, पेन हो या कोई अन्य चीज, बच्चे हर चीज से कुछ–न–कुछ सीखते हैं, मगर इसके लिए चाहिए मां–बाप की तरह धैर्य। सारी स्कूली शिक्षा की खराबी हमारा अधैर्य है। इस अधैर्य के कारण ही होल्ट ने कहा था कि स्कूल से बच्चे 'ग्रोइंग एब्सर्ड' अर्थात् बेवकूफों की तरह बड़े होते हैं। आनन्द और उत्साह का स्कूल तब ही बन सकता है जब स्कूल मां–बाप की गोदी की तरह बच्चों को सीखने की वह आजादी दे, जो उस 16 माह की बच्ची को दी गई थी। बच्चों को जगा जगा कर पढ़ाने वाले मां–बाप और गलाकाट स्पर्द्धा में बच्चों को डालदेने वाले स्कूल क्या कटघरे में खड़े करने लायक नहीं?

क्रांति की बाराखड़ी

क्यूबा। लातीनी अमेरिका का एक छोटा–सा देश, जो अमेरिका के मुहाने पर बसा है। फिदेल कास्त्रो वहां के तानाशाह शासक माने जाते हैं मगर समाजवादी दुनिया में वे उसी तरह लोकप्रिय हैं जिस तरह किसी समय टीटो, नासेर, नेहरू और ख्रुश्चोव आदि हुआ करते थे। टीटो ने युगोस्लाविया एक किया, नासेर ने मिस्त्र को अशिक्षा व गुलामी के अभिशाप से मुक्त किया और नेहरू इसलिए बड़े नहीं थे कि वे प्रधानमंत्री थे, बल्कि एक लेखक के रूप में उन्होंने अपनी बेटी को जो पत्र लिखे वह पत्र शैली का सर्वश्रेष्ठ साहित्य माना जाता है और यह बताता है कि बच्चों को पत्र लिखकर बच्चों की तरह कैसे जिया जा सकता है और बच्चे पत्रों से या प्यार से जो सीखते हैं वह एक प्रधानमंत्री को जीवनभर बच्चों का चाचा बनाकर रख सकता है। फिदेल कास्त्रो ने अपने देश के बच्चों को लेकर अनौपचारिक शिक्षा में एक अद्भुत प्रयोग किया, जो एक तरफ रोमांचक और चुनौतीपूर्ण था तो दूसरी तरफ बच्चों की अपने देश के प्रति भक्ति क्या होती है यह बताता है। फिदेल कास्त्रो ने बच्चों से पूछा – क्या आपको यह अच्छा लगेगा कि आपके देश को कोई अनपढ़ कहे? यदि आप अपने देश को पढ़ा–लिखा देखना चाहते हैं तो आप सबको शिक्षक बनना होगा। कक्षा आठ पास सभी बच्चों को कास्त्रो ने तीन चीजें पकड़ाई। पुराने किले, कंदील और किताब–पटटी। यह किले, कंदील और किताब की शिक्षा पूरे देश में बच्चों ने इस प्रकार ली कि पूरी क्यूबा तीन साल में न केवल साक्षर बल्कि पढ़ा–लिखा बन गया। बच्चे दिन में अपना स्कूल करते और शाम को हाथों में कंदील लिए पहाड़ी, गांवों, नगरों, मोहल्लों और जटिल जगहों पर चल देते। वहां बच्चों, प्रौढ़ों सबको पढ़ाते और लौट आते। इस तरह इन 13 से 15 साल के बच्चों ने

अपने संकल्प से, अपनी निष्ठा से और अपने देशप्रेम से पूरे क्यूबा को तीन साल में एक सम्पूर्ण साक्षर देश बनाकर क्रांति की नई बाराखड़ी लिख दी, जिस पर अमेरिका के एक शिक्षाविद् जोनाथन काजोल ने एक किताब लिखी, जिसका नाम है 'क्रांति की बाराखड़ी'। बच्चों का यह करिश्मा देखकर सारी दुनिया चौंक गयी और कई अन्य देशों ने क्यूबा के उदाहरण का अनुसरण किया।

न्यूजीलैंड के आदिवासी कैसे हुए शिक्षा के आदी

न्यूजीलैंड का एक आदिवासी कबीला जनजाति बिल्कुल अनपढ़ थी। सिलविया एशटन वानर्र नामक एक महिला को लगा कि आदिवासी अनपढ़ क्यों रहें। उसने उन्हें तरह–तरह से आकर्षित किया, मगर आदिवासी बच्चों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। न उनको, न उनके पालकों को सिलविया मना सकी। फिर उसने एक जगह रोज संगीत बजाना शुरू किया और यह केवल लोक संगीत ही नहीं था, बल्कि मोजार्ट और जेज की सिम्फनी भी थी। इन्हें सुनसुन कर बच्चे उस जगह आकर बैठने लगे। बस सिलविया को मिल गया बच्चों के साथ गाने, बजाने और उन्हें सिखाने का तरीका। सिलविया उनके साथ गाने लगी, बच्चे भी गाने लगे, नाचने लगे और धीरे–धीरे गा–गाकर वे शब्द और उनके मतलब जानने लगे। उन शब्दों को लेकर सिलविया ने एक प्रणाली रची और गीतों को बच्चों की बाराखड़ी में बदला, जो वाक्यों में बनी हुई थी। इस प्रकार बच्चों के साथ वाक्य पद्धति आजमा कर थोड़े ही समय में सिलविया ने मावरी आदिवासियों को शिक्षा का चस्का लगा दिया और दुनिया भर में संगीत से शिक्षा का एक नवाचार कर डाला। आगे चलकर इन बच्चों ने अपने लोकगीतों में गा–गाकर अपने माता–पिताओं को भी साक्षर कर दिया। इस प्रकार सिलविया ने बच्चों को माता–पिता का शिक्षक बना कर शिक्षा में संगीत और बाल शिक्षक का ऐसा काम किया जो आज उसकी पुस्तक 'टीचर' में दर्ज है और दुनिया भर में इस प्रणाली को अपनाया जा रहा है।

मांटेसरी : मां या मादाम

एक बार मादाम मारिया मांटेसरी ने शिक्षकों से कहा कि बच्चों को सबसे ज्यादा सीखने में तब मजा आता है जब वे खेलते–खेलते सीखते हैं। इटली के कई शिक्षकों ने इस बात को नहीं माना। मांटेसरी ने खेल से सीखने का प्रयोग शिक्षकों और अभिभावकों के समक्ष करके दिखाया। एक पांच साल के बच्चे को टेबल पर बिठाकर उसके पास एक पेटी रख दी। उस पेटी में तरह–तरह के आकर के कुछ छेद बना दिये। पास ही पेटी के छेद के आकार के कुछ गत्ते के टुकड़े पटक दिये। अब बच्चा अपने आप गत्ते के टुकड़ों और पेटी के छेदों के आकार से खेलने लगा। एक शिक्षक का कहना था – बच्चों को तो कहानी अच्छी लगती है। वे कहानी से अच्छा सीखते हैं। मांटेसरी ने कहा – अच्छा सुनाओ कहानी। जब शिक्षक ने कहानी सुनाई तो बच्चे ने कहा बन्द करो कहानी, मुझे तो खेल खेलना है। फिर दूसरे शिक्षक ने कहा – बच्चे संगीत से अच्छा सीखते हैं। मांटेसरी

ने कहा – अच्छा, सुनाओ संगीत। जब संगीत सुनाया गया तो बच्चा बोला मुझे डिस्टर्ब मत करो। मुझे पहले हर छेद के लिए गत्ते खोजने दो। संगीत भी बन्द कर देना पड़ा। तीसरी शिक्षिका ने कहा – बच्चे को लालच दो, कोई चोकलेट आदि दीजिए। वह जल्दी सीखेगा। बच्चे को चाकलेट दी गई, मगर उसने चाकलेट लेकर फेंक दी। इस तरह कई प्रयोग कर डाले मगर बच्चा नहीं माना। वह छेद में उसी आकार के टुकड़े डाल रहा था मगर वह आकार उसे मिल नहीं पा रहा था। जब बच्चा बिलकुल निराश–सा होने लगा तो मांटेसरी ने एक आयाताकार बिस्कुट उसके हाथ में चुपके–से पकड़ा दिया। अब बच्चे ने वह बिस्कुट देखा, फिर पेटी का छेद देखा और बिस्कुट उस छेद में जब डाला तो वह बिस्कुट छेद में चला गया। बच्चा अपनी सफलता पर झूमकर उछल पड़ा। उस तरह उसने खेलते–खेलते ज्यामितीय आकारों की पहचान इतनी अच्छी तरह से सीख ली कि उसे अलग से सिखाना नहीं पड़ा। ऐसे अनेक प्रयोग मांटेसरी ने बच्चों के साथ करके बच्चों के अन्दर के मननशील मन को टटोला और उन्हें खेल–खेल में सिखाने की विश्वविख्यात प्रणाली दी।

गुजरात नो गीजू – मूंछवाली बा

गिजुभाई बधेका एक वकील थे। दक्षिण अफ्रीका में वकालत करते थे। वे गांधीजी के साथ भारत लौट आये थे। गांधी राजनीति में चले गये। जब गिजुभाई ने उनसे पूछा 'मैं क्या करूं' तो उन्होंने कहा – 'तुम बच्चों को पढ़ाओ।' गिजुभाई ने अपना ही शिक्षाशास्त्र रचा। उन्होंने एक टूटे–फूटे सरकारी स्कूल को अपनी प्रयोगशाला बनाया। वहां खेलकर, गाकर, नाचकर, कहानी कहकर गिजुभाई ने इस तरह शिक्षण किया कि बच्चे जो सीखने से भागते थे वे सीखने के लिए भाग–भाग कर आने लगे। गिजुभाई बच्चों को अपना देवता यानी बालदेवता कहते थे। बच्चे जब आते थे तो हाथ जोड़ कर उनका स्वागत करते थे और छुटटी होती थी तो दरवाजे पर खड़े होकर उन्हें विदा करते हुए कहत थे – 'फेर आवजो'। उन्होंने 'बालदर्शन', 'मां–बाप के प्रश्न', 'मां–बाप से माथापच्ची' और 'दिवास्वपने' जैसी पुस्तकों के जरिये तत्कालीन शिक्षा का रूपक ही बदल डाला। कहानियों, किस्सों, खेलों और गीतों के जरिये उन्होंने बच्चों को उतना सिखा दिया केवल एक साल में, जितना पांच साल में उन्हें शिक्षक नहीं सिखा पाते थे। उन्होंने भारत का पहला बालमंदिर मांटेसरी पद्धति से दक्षिणामूर्ति भावनगर में खोला। बच्चे उन्हें प्यार से 'मूंछवाली मां' कहते थे। मांटेसरी ने स्वयं कहा था – 'गिजुभाई का बच्चों के लिए काम मेरे काम से भी बड़ा है' और गांधीजी का कहना था कि उनका काम उग निकला है। बच्चों को स्कूल की मारपीट से बचाकर खेल–खेल में सिखाकर लगभग 300 कहानियों व अन्य पुस्तकों से जो शिक्षाशास्त्र गिजुभाई ने दिया वह सारी दुनिया में अद्‌भुत माना जाता है। बाल विश्वकोश और बाल विश्वविद्यालय की पहली कल्पना भी उन्होंने ही की थी। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम फ्रोबेल, मांटेसरी, लाक, मिल आदि सबको जानते–पढ़ते हैं, मगर अपने ही शिक्षाविदों से बेखबर हैं।

गांधी जी का सेब

जब वर्धा में नई तालीम या बुनियादी शिक्षा का मसौदा बन रहा था तो वहां जाकिर हुसैन साहब, के.टी.शाह, कृपलानी, आशा देवी आदि अनेक लोग मौजूद थे। बापू ने पूछा – 'के.टी. अपने बच्चों के लिए कैसी शिक्षा तैयार कर रहे हो?' सब चुप थे। फिर के.टी. ने पूछा – 'बापू आप ही बताइये न, कैसी शिक्षा हो?' बापू ने कहा –'के.टी., अगर मैं किसी कक्षा में जाकर यह पूंछू कि मैंने एक सेब चार आने में खरीदा और उसे एक रूपये में बेच दिया तो मुझे क्या मिलेगा? मेरे इस प्रश्न के जवाब में अगर पूरी कक्षा यह कह दे कि आपको जेल की सजा मिलेगी तो मानूंगा कि यह आजाद भारत के बच्चों के सोच के मुताबिक शिक्षा है।' बापू के इस सवाल पर सब दंग थे। वास्तव में किसी व्यापारी को यह हक नहीं है कि वह चार आने की चीज पर बारह आने लाभ कमाये। इस तरह इस प्रश्न में नैतिक शिक्षा का एक संदेश बापू ने बिना बताये ही दे दिया। अब कौन कह सकता है कि बापू एक शिक्षाविद नहीं थे।

बच्चों की दुनिया में काम करने वाले कई हैं। बच्चे स्वयं अपने शिक्षक कैसे बन सकते हैं? जब एक चौदह साल के बच्चे ने ओंकारेश्वर के नर्मदा तट पर बैठकर सौ जानें डूबने से बचाई तो इस साहस की शिक्षा बच्चे ने कहीं और से न लेकर नदी की लहरों से ली थी। जब कोई एलिस वण्डरलैण्ड में घूमती है, जब कोई गुलिवर बौनों के देश में फंस जाता है, जब कोई बच्चा टाम काका की कुटिया में तरह–तरह के खेल करता है, जब कोई एन फ्रेंक अपनी डायरी लिखकर युद्ध की भयावहता पर सारी दुनिया को शान्ति और अहिंसा का पाठ पढ़ाती है और जब किसकी गिजुभाई या मांटेसरी के बच्चे खेल और खिलौनों की रंगीन दुनिया से सारी दुनिया के शिक्षाशास्त्र को चुनौती देते हैं तो लगता है कि बचपन उस उम्र का नाम है जो दुनिया को बूढ़ा होने से बचाता है। बचपन उस उम्र का नाम है जिसकी ऊर्जा कभी समाप्त नहीं होती।

(साभार – नया ज्ञानोदय)

बुनियादी शिक्षा बच्चों का मौलिक अधिकार विषय पर प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह द्वारा राष्ट्र को संबोधन

लगभग 100 साल पहले भारत के एक महान सपूत श्री गोपालकृष्ण गोखले ने इम्पेरियल लेजिस्लेटिव असेमब्ली में भारतीय लोगों को शिक्षा का अधिकार देने का कानून बनाने की बात कही थी।

इसके तकरीबन 90 साल बाद शिक्षा के अधिकार को एक बुनियादी हक़ के तौर पर शामिल करने के लिए भारत के संविधान में संशोधन किया गया।

आज, हमारी सरकार सभी बच्चों को बुनियादी शिक्षा का अधिकार देने के अपने उस आश्वासन को पूरा कर रही है।

बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए अगस्त 2009 में संसद ने कानून बनाया था। यह कानून आज (1.4.2010) से लागू हो गया है।

संविधान के अनुच्छेद –21ए में दिया गया शिक्षा का बुनियादी हक भी आज से लागू हो गया है। इससे इस बात का पता चलता है कि हम बच्चों की शिक्षा और भारत के भविष्य को कितनी अहमियत देते हैं।

हमारा देश नौजवानों का देश है। हमारे बच्चों और नौजवानों की सेहत, उनकी शिक्षा और उनके हुनर, हमारे देश को खुशहाल और ताकतवर बनाएंगे।

शिक्षा कामयाबी की कुंजी है। यह हमको मज़बूत और देश को ताकतवर बनाती है।

हमारी सरकार का यह मानना है कि अगर हम अपने बच्चों और अपने नौजवानों को सही शिक्षा दें तो एक मज़बूत और खुशहाल देश के रूप में भारत का भविष्य सुरक्षित होगा।

हमने इस बात का पक्का इरादा कर रखा है कि सभी बच्चों की पहुंच शिक्षा तक हो। चाहे वे बालक हों या बालिकाएं, चाहे उनका सामाजिक स्तर कुछ भी हो। उनको शिक्षा के जरिए ऐसा ज्ञान और ऐसे मूल्य हासिल होने चाहिए जो उनको भारत का एक जिम्मेदार और सक्रिय नागरिक बना सकें।

शिक्षा के अधिकार को साकार करने के लिए केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों, केन्द्र शासित प्रदेशों की सरकारों तथा जिला और ग्रामीण स्तर की सरकारों को इस साझा राष्ट्रीय प्रयास में मिलकर काम करना होगा। मैं सभी राज्य सरकारों से अपील करता हूं कि इस राष्ट्रीय प्रयास में दृढ़ निश्चय के साथ शमिल हों। हम राज्य सरकारों के साथ मिलकर यह सुनिश्चित करेंगे कि धन की कमी की वजह से शिक्षा के अधिकार को लागू करने में कोई अड़चन न आए।

शिक्षा के लिए की गई कोशिश तभी कामयाब हो सकती है जब हमारे शिक्षक योग्य हों और अपने कर्त्तव्य के प्रति समर्पित हों। शिक्षा के अधिकार को लागू करने के लिए भी यह जरूरी है। मैं देश भर के शिक्षकों से इस प्रयास में भागीदार बनने का अनुरोध करता हूं।

हम सभी की यह कोशिश होनी चाहिए कि हमारे शिक्षक सम्मान के साथ अपना काम कर सकें और हमें उनकी प्रतिभा और रचनात्मकता का पूरा फायदा मिल सके।

शिक्षा के अधिकार के इस कानून में बच्चों के मां–बाप और अभिभावक को भी कुछ अहम जिम्मेदारियां दी गई हैं। उन्हें स्कूलों के प्रबंधन में हाथ बंटाना होगा।

इस कानून को अमल में लाते हुए हमें बच्चियों, दलितों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों की जरूरतों पर खास ध्यान देना होगा।

मैं एक साधारण परिवार में पैदा हुआ था। बचपन में स्कूल जाने के लिए मुझे एक लंबा रास्ता तय करना पड़ता था। रात में, मुझे मिट्टी के तेल के लैंप की हल्की रोशनी में पढ़ाई करनी पड़ती थी। मैं आज जो कुछ भी हूं शिक्षा की ही बदौलत हूं।

मैं यह चाहता हूं कि भारत का हरेक बच्चा, चाहे वह लड़की हो या लड़का, शिक्षा की रोशनी से फायदा उठाए। मैं चाहता हूं कि हर देशवासी एक उज्जवल भविष्य का सपना देख सके और इस सपने को साकार कर सके।

आइए, हम सब मिलकर इस कानून को भारत के बच्चों को समर्पित करें। अपने नौजवानों के लिए। अपने देश के भविष्य के लिए।

ooooo

दायित्व हीनता

विमला लाल

इक्कसवीं सदी की जन संस्कृति में "दायित्व हीनता" एक ऐसा शब्द है जिसने भारतीय संस्कृति की नींव हिलाने का पूरा प्रबन्ध कर लिया है। "दायित्व हीनता" अर्थात कोई जिम्मेदारी नहीं, कोई जवाब देही नहीं। स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छन्दता और उदंड़ता की प्रवृति जिसे न किसी की जरूरत है न किसी के प्रति जवाब देही और कर्तव्य के नाम पर सब कुछ 'मैं' पर ही केन्द्रित हो कर रह जाता है। यह भावहीन 'मैं' और 'मेरा' भौतिकता का वह पहलू है जिसे देख कर लगता है जैसे विज्ञान और विकास की बात करते–करते वक्त किसी ऐसी सभ्यता को जन्म देने जा रहा है जिसके गले में पट्टी तो आधुनिकता की लटकी है किन्तु डोर आदि काल से जुड़ी है। जहां न कहीं रिश्ते थे और न ही परिवारों की दरकार। किन्तु परिवर्तन की इस होड़ में हम शायद भूल रहे हैं कि आदिमानव भी कभी भावनाहीन और कर्तव्यहीन नहीं था। उन्हें अपनी नग्नता का भी अहसास था और रिश्तों की भी तलब थी। तभी तो उन्होंने आनन फानन वृक्षों की छाल और पशुओं की खाल का अविष्कार करके अपने शरीर ढ़कने का भी प्रबन्ध कर लिया और व्यक्ति से व्यक्ति का भावनात्मक रिश्ता जोड़ कर परिवारों का भी गठन कर लिया।

किन्तु आज के इस विकसित युग में न तो कहीं कपड़े की कमी है न ही विरासत में मिले परिवारों की। किन्तु सोच और पसंद ऐसी कि शरीर जितना नंगा उतना आर्कषक और रचे बसे परिवारों की ऐसी कटाई छटाई कि हर व्यक्ति अकेलेपन और तन्हाईयों में भटकता दिखाई देता है।

आज रिश्ते भी हैं, सम्बन्ध भी हैं, परिवार भी हैं और व्यवहार भी हैं किन्तु व्यवहारिकता में 'दायित्व' को खदेड़ने के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों ने ऐसे ऐसे कारणों को जन्म दे दिया है जिनकी आड़ में दायित्व मुक्त होकर जीना हर व्यक्ति के लिए सुलभ और सुखद होने लगा है। नैतिक मूल्यों के लिए भी कहीं कोई स्थान नहीं। टूटते परिवार गवाह हैं।

इतिहास गवाह है, भारतीय संस्कृति में 'दायित्व हीनता' के लिए कभी कोई स्थान नहीं रहा। परिवार से लेकर समाज, और समाज से लेकर देश तक, प्रत्येक स्तर पर मानवीय दायित्व अपने सही मुकाम पर रहा है। इस संस्कृति में दायित्वहीनता पाप और अभिशाप थी और मौलिक दायित्व सांस्कृतिक धरोहर थे जिसे विरासत की तरह अपनाने और निभाने के लिए प्रयास नहीं करने पड़ते थे, वे स्वतः निभ जाते थे। संयुक्त परिवार साक्षी है किन्तु बदलते वक्त ने जाने क्यों अपने मूल से मुंह मोड़ कर एक ऐसी सभ्यता का दामन थाम लिया है जिसमें स्वार्थों, रस्मों और रिवाजों की मोहताजी के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। रिश्ते ऐसे कि 'हाय' और 'बाय' के शब्दों में ही सिमट गए। नैतिक जिम्मेदारी जैसे गए जमाने की बात हो गई है। बात अगर इन्ही सीमित शब्दों तक अटकी

रहती तो शायद कभी न कभी अपनी भूली–बिसरी कहानियों को याद करके अपने घर का रूख कर भी लेते, किन्तु हमने तो बेपैंदे लोटे की तरह लुड़क कर दूसरों की कमजोरियों और मोहताजियों को ही अपना बसेरा बना लिया और अपने रचते बसते घरों की ईंट से ईंट बजा दी है। जो दूसरो का था वह तो आनन्द हो गया और अपना सब कुछ सड़ा गला जिसे धो पोंछ कर सुथरा करने के बजाए फेंक देना ही समझदारी लगने लगा। आलम यह है कि आधुनिकता की आड़ में पनपी सोच और सभ्यता में 'दायित्व' तो क्या साधारण औपचारिकता के लिए भी स्थान नहीं रहा।

माना कि सभ्यताएं परिवर्तित होती रहती हैं, कभी वक्त का दामन थाम कर तो कभी मजबूरी का जामा ओढ़ कर और कभी आज की तरह नकल को ही अकल का वास्ता देकर। किन्तु संस्कृति–सभ्यता, देश, काल और जाति विशेष की अच्छाईयों और सच्चाईयों से जुड़ी होती है जिसमें काल और जाति विशेष की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है और आत्मा परिमार्जित तो हो सकती है किन्तु परिवर्तित नहीं। मानव जीवन मूल्य इन्हीं धारणाओं पर ही तो आधारित होते हैं। जन जीवन मूल्य बिखरते हैं तो सांस्कृतिक नींव भी उमगने लगती है। आज जब कोई जीवन मूल्य ही नहीं रहे तो संस्कृति की क्या पहचान होगी। इसीलिए जिस संस्कृति में जन्म के रिश्ते माथे की शोभा होते थे, वहीं आज कंधो का बोझ बन चुके हैं। इस बिखराव का न किसी को दर्द है न लज्जा। चाहिए तो केवल मुक्ति।

कहने को हम आज भी अपनी सांस्कृतिक गाथाओं को गाते नहीं थकते। 'हमारा देश महान', 'यह ऋषि–मुनियों की धरती है', 'प्रेम के सागर बहते हैं', इत्यादि–इत्यादि जिसे सुनकर अच्छा भी लगता है और हम गौरवान्तित भी महसूस करते हैं किन्तु वास्तविकता कितनी कड़ी है और कैसा दर्द दे रही हैं, इसका अहसास होने पर भी कोई मुंह खोल 'हाय' नहीं कर सकता । अपनी हार कोई क्यों माने? करनी ऐसी है कि वृद्धाश्रमों में कराहते वृद्ध और सड़कों पर लड़खड़ाते कदम आज गौरव शब्द को भी शर्मसार कर रहे हैं। नारी को सरेआम लुटते देख लगता है जैसे संस्कृति को सांप सूंघ गया है। जिस देश के नागरिक जन्म–भूमि को भी जननी मान मिटटी को भी सिर माथे लगा लेते थे, वहीं अपनी ही जननी को अपमानित होते देख आज का युवा न केवल आंखे मूंद लेता है बल्कि वक्त आने पर स्वयं भी अपमानित करने से चूकता नहीं।

कहते है न कि जिसकी लाठी उसी की भैंस। आज के वक्त की लाठी शायद दायित्वहीनता के साथ लग गई है। मुक्ति की चाहत में बेटा तो क्या पोता भी 80–90 वर्ष के दादा को वृद्धाश्रमों के सुखों का ऐसा चित्रण देता है जिसे सुन समझ कर वृद्ध न केवल बुढ़ापे को कोसता है बल्कि साहस कर चल भी देता है उन राहों पर जहां उसका कोई अपना तो नहीं होता, पर आस होती है शायद कोई ऐसा मिल जाए जो उसे अपना बना कर अपना ले।

आज की पीढ़ी की यह दायित्वहीन सोच उनका जीना तो आसान कर देती है किन्तु विरानियों और अकेलेपन का जीवन उन्हें भी किस तरह अभिशप्त कर रहा होता है यह वह समझ ही नहीं

पाते। शायद इसीलिए बड़ी आसानी से कह देते हैं 'अरे रिश्तों से तो मित्र ही अच्छे हैं, जो काम भी आते हैं और कोई जिम्मेदारी भी नहीं रहती'। अगर यही सोच बरकरार रही तो शायद आने वाले दिनों में मित्रों की जगह भाड़े के आदमी ले लेंगे। स्वच्छन्द प्रवृति। न कोई भाव, न भावना, न परस्पर लाग–लगाव। किन्तु भूल रहे हैं कि यह परस्परता वह डोरी है जिसने इन्सान को इन्सान के साथ बांध रखा है। समाज को जोड़ रखा है। जब 'परस्पर' शब्द ही निःशेष हो जाएगा तो समाज टिकेगा कहां? परिणाम यह है कि मां बाप वृद्धाश्रमों के साथी तलाश रहे हैं और बच्चे क्रचों में आया की उंगली थाम निर्मोहित और दायित्वहीनता की घुटटी पर रहे हैं।

जिन लोगों ने कभी ममता की मिठास चखी थी जब उनकी सोच ही दायित्व से मुंह मोड़ रही है तो आज जिन्होंने ममता की जगह केवल सिक्कों की खनक ही सुनी है उनसे आशा भी क्या की जा सकती है। उनके कर्तव्य की इतिश्री तो चाकलेट के डिब्बों और महंगे खिलौनो में ही सिमट जाती है। मां के पास वक्त कहां है कि वह बच्चों को दायित्व और कर्तव्य की परिभाषा से भी परिचित करा सके। और अब विदेशी चलन के 'लिविंग टुगैदर' के फार्मूले ने माता–पिता तो क्या गृहस्थी के भी अर्थ बदल डाले हैं। गृहस्थी बस भी जाती है, उजड़ भी जाती है। न कोई जिम्मेदारी, न कोई दायित्व। न सात फेरों का झंझट न सात जन्मों का बन्धन। न कोर्ट, न कचहरी। यहां तो इस्लाम की तरह 'तलाक' के तीन अक्षर भी उच्चारण की जरूरत नहीं। कानून ने इस वक्त की औलाद को जायज मानकर इसे और भी सुखद और सरल कर दिया है। यह और बात है कि ऐसी औलाद जीवन भर मां बाप के घर ही तलाशने में निकाल देगी।

जिन बच्चों ने मां–बाप ही नहीं देखे वह भला जिम्मेदारी और दायित्व के अर्थों को क्या जानेंगे। सोचा जा सकता है।

आजादी और अधिकारों के नाम पर यह स्वेच्छाचारित मानवीय भावनाओं पर ऐसा कुठाराघात कर रही है कि भावुकता खोटे सिक्के सी लौटाई जा रही है और बौद्धिकता की तेज धार से मुहब्बत की चीर–फाड़ करके स्वार्थों के लिए ऐसी राह बनाई जा रही है जिस पर चल कर तलवे तो सब के लहुलुहान हो रहे हैं पर उनकी अपनी करनी 'आह' भी नहीं करने दे रही। बस दांत भींच कर सभी अपना दर्द छिपाते फिर रहे हैं।

इस तरह की स्वार्थ पूर्ति के आगे न मान टिक सकता है, न सम्मान। न प्यार, न ममता और न कोई कर्तव्य। हर व्यक्ति अधिकारों के आधार पर ही जीना चाहता है। लेकिन भूल रहा है कि जब तक कोई कर्तव्य निभाएगा नहीं तो अधिकार आऐंगे कहां से। कर्तव्य ही तो अधिकारों की नींव है।

मानती हूं कि इस सोच के पीछे कुछ वक्त की भी मजबूरियां है। कभी विदेशी सभ्यता का अनुकरण तो कभी भौतिक उपलब्धियों की आकांक्षाएं, जिसने मनुष्य की प्राकृतिक संवेदनाओं पर भी कड़ा पहरा बिठा दिया है। किन्तु यह पहरा केवल परिवार, समाज तक ही सीमित नहीं रहा। पूरा देश ही इस दोजख से गुजर रहा है। देश के प्रति उत्तरदायित्व की बात करें तो उत्तर आता है – 'सेना है न'।

जिम्मेदारी की बात करें तो – 'सरकार है न'। बहु बेटियों की इज्जत की बात करें तो – 'पुलिस है न'। इस पर नागरिकता ऐसी कि छोटी–छोटी मांगों के लिए देश की करोड़ों की सम्पति स्वाह करते भी किसी को भय नहीं लगता। यह भी भूल जाते हैं कि इसकी भरपाई में इन गरीब लोगों का भी हिस्सा रहता है जो केवल दो वक्त की रोटी के लिए जुझते–जुझते ही इस दुनिया से चले जाते हैं।

आज वे यह दायित्वहीन उतर, कर्तव्यहीन सोच, उधारी संस्कार और रिवाज़ जाने कैसी समाज का गठन करेंगे और किस संस्कृति में अपना नाम दर्ज करवाऐंगे, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु इतना अवश्य स्पष्ट हो रहा है कि दायित्वहीनता के पन्नों पर लिखे मानवीय सभ्यता के इस अध्याय को जोड़ने के लिए भारतीय संस्कृति में अलग से स्थान अवश्य खोजना पड़ेगा जो शायद माविष्यय में अमानवीय प्रकरण के रूप में ही जाना समझा जाए और यदि संभल नहीं गये तो आने वाली पीढ़ी को जाने कैसी राह दिखा जाए।

धूम्रपान का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

शिव प्रकाश कटियार

दुनिया भर की जनता के स्वास्थ्य में सुधार करना ही विश्व स्वास्थ्य संगठन का अंतिम और एकमात्र मकसद है। तंबाकू के बढ़ते प्रकोप को खत्म करने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन के सदस्यों ने हर वर्ष 31 मई को वर्ल्ड 'नो टोबैको डे' के रूप में मनाना प्रारंभ किया। सन् 1987 से प्रतिवर्ष 31 मई को यह दिन पूरे विश्व में मनाया जाता है। इसे मनाने का मुख्य लक्ष्य तंबाकू से होने वाली मृत्यु और गंभीर समस्याओं को कम करना है। साथ ही लोगों में इससे होने वाली समस्याओं से बचने के उपायों और इसके लक्षणों के बारे में जागरूकता पैदा करना है।

आतिथ्य का प्रतीक बन चुकी तम्बाकू सन् 1605 ई0 में सर्वप्रथम पुर्तगालियों द्वारा लाई गयी थी। तब स`अब तक इसके सेवन की लत क्रमशः बढ़ती ही जा रही है। आम लोगों में विशेषकर किशोर पीढ़ी में धूम्रपान के प्रति बढ़ती रूचि चिंता का विषय है। इसका प्रभाव शरीर के सभी अंगों पर पड़ता है। देश में धूम्रपान करने वालों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। करीब 8 लाख भारतवासी हर वर्ष तम्बाकूजनित रोगों से मरते हैं। एक सिगरेट पीने के बाद शरीर में आक्सीजन की मात्रा को सामन्य होने में लगभग 8 घंटे लगते हैं। लगभग 2 दिन तक शरीर में निकोटीन का प्रभाव रहता है। तम्बाकू के धुएं में 4000 से अधिक हानिकारक रसायन हैं। इनमें से कुछ हानिकारक रसायन निम्न हैः

1. अमोनिया (फर्श को साफ करने वाले द्रव्य में इस्तेमाल किया जाता है),
2. कार्बन मोनोक्साइड (गाड़ियों द्वारा छोड़े जाने वाले धुंए में मौजूद खतरनाक गैस),
3. नैपथलीन (कीड़ों को दूर रखने की दवाइयों में इस्तेमाल किया जाता है)
4. निकोटीन (कीड़े–मकोड़े मारने की दवाई में इस्तेमाल किया जाता है)

सन् 1991–2002 के दौरान भारत में बनायी गयी 76.5 प्रतिशत फिल्मों में तम्बाकू का इस्तेमाल दिखाया गया। पान मसाला, तम्बाकू, तम्बाकू के बने पदार्थों के सेवन का प्रचलन दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। परिणामस्वरूप मुंह के अन्दर तरह–तरह के घातक रोग बढ़ते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए मुंह के अन्दर कोई भी मिर्च मसाला या तीखा पदार्थ के सेवन से जलन या दर्द का होना अथवा मुंह का पूर्णरूपेण न खुल पाना, जिसे सबम्यूकज फाइब्रोसिस कहते हैं; पानी या किसी भी ठंडे पदार्थ के सेवन से दांतों में दर्द होना; मुंह से बदबू आना; खाना खाने एवं थूकते वक्त कठिनाई होना; बलगम के साथ खून का आना; गले या जबड़े के नीचे गांठ का हो जाना; आवाज में भारीपन का होना; मुंह के अन्दर मवाद आना; मुंह के अंदर घाव का हो जाना; रक्त का गाढ़ा हो जाना;

कोलेस्ट्राल की मात्रा का बढ़ जाना; धमनियों का सिकुड़ जाना आदि।

धूम्रपान से होने वाले मन पर दुष्प्रभाव निम्न हैं – तनाव, चिंता, अवसाद, आत्महत्या की प्रवृत्ति, व्यक्तिगत असंतुलन, स्वभाव में चिड़चिड़ापन व जल्द उत्तेजित होना। तम्बाकू से शरीर की हड्डियाँ कमजोर हो जाती है। तम्बाकू के सेवन से कैंसर की बीमारी हो जाती है। निकोटीन जो तम्बाकू सेवन का मुख्य तत्व है, के प्रभाव से ही धूम्रपान न छोड़ने की मानसिकता का विकास होता है। निकोटीन से होने वाले मुख्य रोगों में क्रोनिक ब्रॉन्काइटिस, फेफड़े का कैन्सर, हृदय की धमनियों पर प्रभाव, कॉरोनरी हार्ट डिसीज, लकवा, नेत्र संबंधी समस्यायें और मुंह का कैंसर शामिल है। तम्बाकू सेवन छोड़ने से व्यक्ति की आयु में वृद्धि होती है। तम्बाकू से निजात के लिए कुछ दवायें भी उपलब्ध है, जैसे – निकोटिन गम, निकोटिन पैच, वैक्सीन आदि।

तम्बाकू की खेती का एक नुकसान यह भी है कि क्रमशः खाद्यान्नों के लिए जमीन की कमी होती जा रही है। यही नहीं तम्बाकू की खेती भूमि के उपजाऊपन को प्रभावित कर उसे बंजरपन की ओर धकेलती है। तम्बाकू सेवन से पर्यावरण भी प्रभावित होता है। एक अनुमान के अनुसार 300 सिगरेटों के लिए एक पेड़ की जरूरत पड़ती है। इस प्रकार नियमित धूम्रपान करने वाला व्यक्ति हर पखवाड़े एक पेड़ का खात्मा कर देता है।

एक शोध के मुताबिक धूम्रपान पुरूषों की तुलना में महिलाओं के लिए ज्यादा घातक साबित हो रहा है। अमेरिका में स्तन और गर्भाशय कैंसर की तुलना में फेफड़े के कैंसर से महिलाओं की मौत अधिक हो रही है। सबसे पहले इसके बारे में आंकड़े जापान से प्राप्त हुए। उन जापानी महिलाओं में फेफड़े का कैंसर अधिक पाया गया जिनके पति वातानुकूलित शयन कक्षों में धूम्रपान करते थे। धूम्रपान महिलाओं की प्रजनन क्षमता को भी प्रभावित करता है। धूम्रपान करने वाली महिलायें अक्सर गर्भधारण से वंचित रह जाती है या फिर जनने वाला शिशु कम वजन का तथा रोगों के प्रति अधिक संवेदनशील होता है।

"टोबैको कन्ट्रोल एंड पीपुल" में छपे एक अध्ययन के अनुसार 40 वर्ष से कम उम्र के धूम्रपान करने वाले लोगों में अपनी ही उम्र के धूम्रपान नहीं करने वाले लोगों की अपेक्षा हृदयाघात की संभावना पांच गुना ज्यादा होती है। ये आंकड़े विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा हृदय रोगों के सम्बन्ध में किये गये अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन से उभर कर सामने आये हैं। संगठन ने अध्ययन के लिए 21 देशों में 33 से 64 वर्ष के आयु वर्ग के लोगों का चयन किया और 1985 से 1994 के बीच हृदय रोगों से पीड़ित लोगों से जानकारी ली। इससे यह निष्कर्ष निकला कि धूम्रपान करने वाले 35 से 39 वर्ष आयु वर्ग के 80: व्यक्ति हृदयघात के शिकार को चुके हैं। 35 से 39 वर्ष के आयु वर्ग के बीच 65 प्रतिशत पुरूष घातक हृदयाघात के शिकार हुये थे जबकि लगभग 55 प्रतिशत महिलायें भी धूम्रपान के कारण हृदय रोगों की शिकार हुई थीं। आंकड़ों में आकलैण्ड में धूम्रपान करने वाले लोगों का प्रतिशत सबसे कम था जबकि बीजिंग में सबसे अधिक।

भारत में तम्बाकू से सम्बन्धित आंकड़े निम्नलिखित हैं :

1. राज्य व केन्द्र सरकार के स्तर पर तम्बाकू से सालाना 20 अरब रुपयों की आमदनी होती है।
2. भारत दुनिया में तम्बाकू का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक और चौथा सबसे बड़ा निर्यातक देश है।
3. भारत में 65 प्रतिशत पुरूष और 33 प्रतिशत महिलाएं किसी न किसी रूप में तम्बाकू का सेवन करती हैं।
4. तम्बाकू की खेती करीब 4 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में होती है।
5. तम्बाकू की खेती में देश करीब के 60 लाख किसान काम करते हैं।
6. प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से तम्बाकू उद्योग देश के 10 करोड़ लोगों को रोजगार देता है।

भारत में तम्बाकू से उत्पन्न बीमारियां निम्नलिखित हैं :

1. भारत में तम्बाकू से सम्बन्धित बीमारियों से प्रतिवर्ष लगभग 8 लाख लोग मौत के शिकार होते हैं।
2. कुल कैंसर ग्रसित मरीजों में से पुरूषों में 50 प्रतिशत और महिलाओं में 25 प्रतिशत तम्बाकू की वजह से होते हैं।
3. दुनिया में मुंह के कैंसर के मामले में भारत का अव्वल स्थान है।
4. भारत में कुल कैंसर में से एक तिहाई तो मुंह के कैंसर होते हैं और इनमें से 90 प्रतिशत तम्बाकू खाने के कारण होते हैं।
5. हृदय की धमनी से सम्बन्धित रोगों और सांस की नलियों में अवरोध के करीब 83 लाख मामले तम्बाकू के कारण होते हैं।
6. भारत में तम्बाकू से सम्बधित बीमारियों की कीमत करीब 270 अरब रुपये प्रतिवर्ष होती है, जो इस उद्योग के लाभों से कई गुना ज्यादा है।

सिगरेट एंड अदर टोबैको प्राडक्ट्स एक्ट, 2003 के अनुसार सार्वजनिक स्थलों पर तम्बाकू व तम्बाकू युक्त पदार्थो का सेवन नहीं किया जा सकता। यह कानून 1 मई 2004 से लागू है। बावजूद इसके निम्न तथ्य चौंकाने वाले हैं।

200 रुपये

इस कानून का उल्लघंन करने पर लगने वाला दंड।

10 लाख

हर साल देश में तम्बाकू सेवन से होने वाली मौतें।

2700

तम्बाकू सेवन से होने वाली बीमारियों से हर रोज मारे जाने वाले लोगों की संख्या।

114

हर घंटे तम्बाकू जनित बीमारियों से मरने वाले लोगों की संख्या।

100 अरब

देश में हर साल सिगरेट की बिक्री।

200 अरब रुपये

हर साल सिगरेट पर होने वाला खर्च (औसतन दो रुपये प्रति सिगरेट की दर से)।

55 लाख

लोग हर साल पूरी दुनिया में तम्बाकू के सेवन से मारे जाते हैं।

80 लाख

2030 में तम्बाकू के सेवन से दुनिया भर में होने वाली मौतों का अनुमान।

इंटरनेशनल क्लासिफिकेशन ऑफ डिसीज (आईसीडी) ने तम्बाकू पर निर्भरता को बीमारी की श्रेणी में रखा है।

जहाँ धूम्रपान वर्जित है –

1. किसी भी कार्यालय की बिल्डिंग (टैरेस, पार्किंग, सीढ़ियां सहित)
2. सार्वजनिक वाहन (टैक्सी, बस, आटोरिक्शा, मेट्रो, रेल, ट्रेन)
3. माल, दुकान, बाजार, हवाई अड्डा, रेलवे स्टेशन, बस टर्मिनल, पब, बार, डिस्को, बैंक्वट हाल, सिनेमा हाल, रेस्त्रां, मनोरंजन केंद्र, खुले प्रेक्षागृह, स्टेडियम

धुआं उड़ा सकते हैं –

1. अपने घर में कहीं भी, आवासीय परिसर में, अपनी बिल्डिंग के टेरेस पर, हाउसिंग सोसाइटी के पार्क और लान में।
2. सड़क पर, निगम पार्कों व खुले पार्किंग में। निजी वाहन में, अगर कोई दूसरा उसे चला रहा हो क्योंकि सिगरेट पीते हुए गाड़ी चलाना पहले से ही कानूनन जुर्म है।
3. होटल के निर्दिष्ट क्षेत्र में (30 कमरों में ज्यादा वाले होटल और 30 सीटों से ज्यादा वाले रेस्त्रां)

कौन देगा दंड –

1. पुलिस, खाद्य इंस्पेक्टर, उत्पाद, सीमाशुल्क, बिक्री कर, स्वास्थ्य और परिवहन इंस्पेक्टर

2. केन्द्र व राज्य सरकारों के सभी राजपत्रित अधिकारी और स्वायत्त संस्थाओं व सार्वजनिक उपक्रमों में इनके समकक्ष अधिकारी।
3. एयरपोर्ट मैनेजर, पोस्टमास्टर, पब्लिक लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन, अस्पतालों के निदेशक, शिक्षक, सहायक स्टेशन मास्टर, स्वास्थ्य सेवाओं के निदेशक, तम्बाकू रोधी प्रकोष्ठ के नोडल अफसर। निजी कंपनियों में एचआर मैनेजर और प्रशासनिक प्रमुख।

कैलिफोर्निया का कदम 1995

अमेरिका के इस राज्य ने सबसे पहले सार्वजनिक स्थलों, कार्यस्थलों, बार और रेस्त्रां में धूम्रपान पर पाबंदी लगाई थी। सिगरेट नहीं पीने वालों के प्रतिरोध का नतीजा है कि वहां खुद ही लोग इस पाबंदी का पालन करते हैं।

2007

इंग्लैण्ड में पहली जुलाई से खुलेआम धूम्रपान पर रोक लागू।

2006

स्काटलैंड ने धूम्रपान पर पाबंदी लगाई।

आयरलैंड

तम्बाकू के सेवन पर रोक को लागू करने के लिए स्वास्थ्य अधिकारियों की नियुक्ति। वहां इस कानून का सख्ती से पालन किया जाता है।

राज्य स्तर पर भी तम्बाकू नियंत्रण कानून बनाये गये हैं –

1. हिमाचल प्रदेश, तमिलनाडु, मेघालय, जम्मू कश्मीर, असम, राजस्थान तथा सिक्किम में सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान पर कानूनी प्रतिबन्ध है।
2. गोवा में धूम्रपान और थूकने पर प्रतिबन्ध अधिनियम 1997 द्वारा सार्वजनिक कार्य स्थलों पर धूम्रपान और थूकने की मनाही है। इसके द्वारा यह भी अनिवार्य कर दिया गया है कि 'धूम्रपान/थूकना निषेध' का पट्ट हर सार्वजनिक कार्य स्थलों पर स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया जाये।
3. इसी तरह का एक कानून 1996 में दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में और 2003 में पश्चिम बंगाल राज्य में लागू किया गया।
4. तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, गोवा, बिहार और महाराष्ट्र की सरकारों ने हाल ही में अपने राज्यों में गुटखे की बिक्री पर रोक लगा दी है।
5. केरल में उच्च न्यायालय के एक आदेश से सार्वजनिक क्षेत्रों में धूम्रपान की मनाही है।

तम्बाकू पर अंकुश हेतु विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा सुझाई छह सूत्रीय नीति –

1. तम्बाकू के मूल्य व इस पर करों में वृद्धि
2. तम्बाकू के विज्ञापन, प्रोत्साहन एवं प्रायोजन पर रोक
3. द्वितीयक धूम्रपान से लोगों का बचाव
4. तम्बाकू के दुष्प्रभावों के प्रति लोगों को चेतावनी
5. धूम्रपान छोड़ने के इच्छुकों की सहायता
6. तम्बाकू सेवन पर सतत् निगरानी कर महामारी रोकने के प्रयास

देश में धूम्रपान पर प्रतिबन्ध लगाकर सरकार ने सही कदम उठाया है, लेकिन केवल प्रतिबन्ध ही काफी नहीं है। उसे सख्ती से लागू भी किया जाये, यह आवश्यक है। हम सभी मिलकर देशभर में जनचेतना अभियान चलाए, जिससे कि इस विकराल समस्या से छुटकारा मिल सके। धूम्रपान करने वाले एवं तम्बाकू के आदी व्यक्तियों को प्रेरित कर इस बुरी आदत से छुटकारा दिलाना ही वर्तमान समय की आवश्यकता है।

कोपेनहेगन : धरती बचाने की एक पहल

संगीता पवार

विकास के इस मौजूदा दौर में घातक होते जा रहे पर्यावरणीय बदलाव हमारे अस्तित्व के लिए संकट बनते जा रहे हैं। दुनिया भर में जलवायु परिवर्तन और गरम हो रही धरती के चलते संभावित प्रभावों पर एक नजर डालें तो हम पाते हैं कि कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर सभी पर्यावरणविद व मौसम वैज्ञानिक एकमत हैं। ये प्रमुख बिन्दु हैं – बढ़ते औसत तापमान से गर्मी में बाढ़ आना, सूखा, जंगलों में ज्यादा आग लगना, जल–आपूर्ति में भारी कमी व जैव–विविधता में 20–30 प्रतिशत कमी के कारण भोजन श्रृंखलाओं का ह्रास आदि। साथ ही एक दशक के अन्दर समुद्री तटों के ऊंचा होने से करोड़ों लोगों के बेघर होने का भी अंदेशा है। 1990 से 2100 के बीच समुद्री स्तर के 0.09 से 0.88 मीटर ऊंचा होने की संभावनाएं जताई जा रही हैं। गरम जलवायु वाले देशों में कृषि उत्पादन में भारी गिरावट के चलते करोड़ो लोग दूसरे क्षेत्रों में शरणार्थी बन जाएंगे व 2080 तक ही करोड़ों लोग भुखमरी का शिकार हो सकते हैं। एशिया व मुख्यतः भारत पर इसके दुष्प्रभावों का जायजा लेने पर ज्ञात होता है कि एशिया में हिमालयी ग्लेशियर आदि (मुख्यतः आसाम, उत्तराखण्ड व जम्मू एवं कश्मीर में) हमारे जल स्त्रोतों पर सीधा असर डालेंगे। इससे हमारी प्रमुख नदियों जैसे गंगा, यमुना एवं ब्रह्मपुत्र आदि का जल स्तर परिवर्तित व कम हो जाने की प्रबल संभावनाऐं हैं। देश के लक्षद्वीप में निचले व छिछले तटों व द्वीपों के समुद्री जल में निमग्न होने का भी खतरा बना हुआ है। विश्व के अन्य भागों में भी समस्या का यही विकराल रूप सामने आता है।

ऐसी विकट परिस्थितियों में धरती बचाने की हर पहल का स्वागत किया जाना चाहिए। कभी–कभी किसी बड़े काम के लिए अधिक समय की आवश्यकता होती है। फिर भी यह कम महत्वपूर्ण नहीं है कि एक ही मुद्दे पर चिंता जताने के लिए अमेरिका, चीन, ब्राजील, भारत, दक्षिण अफ्रीका और यूरोपीय देशों समेत दुनिया के कई गरीब देश, यहां तक कि दर्जनों द्वीप कोपेनहेगन जलवायु परिवर्तन शिखर सम्मेलन में शामिल हुए। इसे इस नजरिये से भी देखा जाना चाहिए कि कुछ न होने से अच्छा तो कुछ होते रहना है। यही कोशिश शायद हमें अपनी जिम्मेदारी समझने और सही दिशा में चलने में मदद करें। यह अच्छा ही है कि कोपेनहेगन के बहाने जलवायु परिवर्तन का कोपभाजन बने देशों को सौ अरब डॉलर से अधिक की सहायता देने की बात कही गई है।

विकास के बढ़ते क्रम में औरों से आगे दिख रहे अमेरिका समेत कुछ विकसित देश भले ही दुनिया को किसी विलेन जैसे दिख रहे हों, लेकिन सच्चाई यही है कि अति के बाद हर किसी को अपनी गलतियों की ओर देखना ही होता है। अमेरिका भी इससे अलग नहीं है। एक ओर जब कॉर्बन उत्सर्जन की मात्रा कम करने को लेकर कुछ विकसित देश एक अलग गुट के तौर पर दिख रहे

हैं, वहीं भारत ने खुद आगे बढ़कर अपनी जो भूमिका तय की है, उससे विकासशील देशों को ही नहीं बल्कि विकसित देशों को भी सबक लेना चाहिए। दूसरों पर उंगली उठाने का समय बीत चुका है। अब हर किसी को अपनी–अपनी जिम्मेदारी लेनी होगी।

यह सही है कि कोपेनहेगन प्रस्तावों पर सभी देशों की इस वक्त एक राय नहीं हो सकती, क्योंकि सभी सरकारें अपने–अपने देशों के आंतरिक प्रशासनिक व राजनीतिक दबावों की अनदेखी नहीं कर सकती। यूरोपीय देश वर्ष 2020 तक ग्रीन हाउस गैसों में और कटौती चाहते हैं, लेकिन खुद अमेरिकी सरकार में इस पर सहमति नहीं बन सकी थी। संयुक्त राष्ट्र वर्ष 2010 तक देशों से ऐसी रिपोर्ट की अपेक्षा कर रहा है, जिसमें वे आने वाले वर्षों में कार्बन उत्सर्जन की मात्रा पर अपना एक रूख स्पष्ट करे। ये दोनों सवाल हर देश के लिए अलग–अलग नजरिये से देखने के हैं। विकसित देश अपनी सुविधाओं में कभी लाए बगैर विकासशील देशों से कुछ अधिक ही अपेक्षा कर रहे हैं। शायद यही कारण है कि विकासशील देश इसे समर्थ देशों की साजिश के तौर पर देख रहे हैं। उन्हें पता है कि अगर वे ऐसे किसी मसौदे पर हामी भरते हैं, तो आने वाले समय में उन्हें न केवल अंतर्राष्ट्रीय पर्यवेक्षण में रहना होगा, बल्कि अपने देश और समाज के बारे में विकास संबंधी नीतियां बनाने में भी उन्हें पहले जैसे आजादी नहीं होगी।

सम्मेलन के कुछ प्रमुख बिन्दु जिन पर आम सहमति बन सकी वे इस प्रकार हैं :

1. उत्सर्जन

विकसित देश व्यक्तिगत या संयुक्त रूप से उत्सर्जन में कटौती करें। सम्मेलन से पहले कटौती की सूची पर प्रतिबद्धता दिखाए। विकासशील देश शमन के उपायों पर भी कदम उठाएं।

2. निगरानी

अंतर्राष्ट्रीय सलाह और विश्लेषणों के प्रावधान के साथ विकासशील देश घरेलू स्तर पर उत्सर्जन की निगरानी करें।

3. गरीब देशों को वित्तीय सहायता

जलवायु परिवर्तन से लड़ने में गरीब देशों की मदद के लिए विकसित देश साल 2020 तक 100 अरब डालर एकत्र करने का लक्ष्य तय करें।

अगले तीन सालों के लिए यह राशि 30 अरब डालर होनी चाहिए।

4. वानिकी

जंगलों की अंधाधुंध कटाई से बढ़ते उत्सर्जन पर रोक लगाना बहुत जरूरी है।
जंगलों और पेड़–पौधों को संरक्षित रखने वाले देशों के लिए और धन मुहैया कराया जाएगा।

5. तापमान

वैश्विक तापमान में वृद्धि 2 डिग्री सेल्सियस से कम रहनी चाहिए।

6. कानूनी स्थिति

उपरोक्त कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं होने चाहिए।

सारांश

यही कहा जा सकता है कि कोपेनहेगन मात्र एक कदम भर है। ऐसी कोशिशें बार–बार करने की जरूरत है। हमें यह भी समझना होगा कि यह मामला सिर्फ ग्लोबल वार्मिंग के अधिकतम स्तर को दो डिग्री सेल्सियस के भीतर रखने तक ही सीमित नहीं है। संकट इससे कहीं बड़ा और गंभीर है। ये दो डिग्री सेल्सियस भी आने वाले कुछ वर्षों में तुवालु और मालदीव जैसे देशों का अस्तित्व खत्म कर देंगे। चूंकि धीरे–धीरे यह संकट हर किसी पर आने वाला है इसलिए जलवायु परिवर्तन के खतरे को समझने और इसके समाधान के लिए राजनीतिक सिर–फुटव्वल की नहीं बल्कि तथ्यपरक और तर्कसंगत चर्चा की जरूरत है।

बंधुआ मजदूरी का बदलता चेहरा

देवाशीष प्रसून

बधुंआ मजदूरों का जिक्र करने पर सरकार का सीधा और साफ जवाब होगा कि अब देश में मजदूरों को बंधुआ नहीं बनाया जा रहा है। केन्द्र और राज्य सरकारें दोनों इस एक बात पर साथ–साथ दिखाई पड़ती हैं। केन्द्र व राज्य सरकारों के श्रम मंत्रालय की जारी रपटों से इस बात की हमें जानकारी भी मिलती है कि देश में न तो अब बंधुआ मजदूर हैं और न बनाए जा रहे हैं। देश में बंधुआ मजदूरी उन्मूलन का कानून 1975 से लागू है। इस कानून के लागू होने के बाद से सरकारों ने अपने प्रयासों के जरिए बंधुआ मजदूरी की व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंका है, यह दावा हर सरकार बढ़–चढ़ कर करती है। लेकिन हकीकत ठीक इसके उलट है। बीते दिनों, बीस राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों के कई शहरों में हुए एक सर्वेक्षण ने देश में बंधुआ मजदूरी के मामले में सरकारी दावों की कलई खोल कर रख दी है। असंगठित क्षेत्रों के कामगारों के लिए बनाई गई राष्ट्रीय अभियान समिति के अगुआई में मजदूरों के लिए काम कर रहे कई मजदूर संगठनों व गैर–सरकारी संगठनों के इस राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण से पता चलता है कि देश में बंधुआ मजदूरी खत्म नहीं हुई है। भले ही इसका स्वरूप नई जरूरतों के हिसाब से बदल गया है, लेकिन असंगठित क्षेत्रों में हो रहा ज्यादातर श्रम, किसी न किसी रूप में, बंधुआ मजदूरी का ही एक रूप है। यह तथ्य भी सामने आया है कि आज देश के ज्यादातर इलाकों में बंधुआ मजदूरी की परम्परा के फिर से जड़ पकड़ने की बड़ी वजह पलायन और विस्थापन है।

किसी मजदूर को अपना गांव–घर छोड़ कर दूसरी जगह मेहनत करने इसलिए जाना पड़ता है, क्योंकि अपने इलाके में उसे दो वक्त की रोटी भी ठीक ढंग से नहीं मिल पाती है। कहीं सूखा, कहीं बाढ़ या फिर किसी के पास खेती के लिए नाकाफी जमीन मजदूरी का एक बड़ा कारण बनते हैं। ऐसे में, वे, जो बस खेतिहर मजदूर हैं, दोहरी मार झेलते हैं। एक तो अपने इलाकों में खेती के बदतर स्थिति के कारण मजूरी बहुत कम पाते हैं और फिर दबंगों व सामंतों की धौंस अलग सहते हैं। बेहतरी की उम्मीद में ही वे पलायन करने को मजबूर होते हैं। बंधुआ मजदूरी का नया स्वरूप जो सामने आया है, उसमें मजदूरों का सबसे बड़ा हिस्सा ऐसे मजदूरों का ही है।

खेती, ईंट–भट्टों, निर्माण–उद्योग और खदानों जैसे कई व्यवसायों में अपना खून–पसीना एक करने वाले मजदूरों को बड़े ही सुनियोजित तरीके से बंधुआ बनाया जाता हैं। मजदूरों को नियुक्त करवाने वाले दलाल शुरूआत में ही थोड़े से रूपए बतौर पेशगी देकर लोगों को कानूनन अपना कजर्दार बना देता है। रूपयों के चक्कर में पड़ कर मजदूर अपने नियोक्ता या इन दलालों का बंधुआ बन कर रह जाता है।

अधिकतर मामलों में, ए दलाल संबंधित उद्योगों की नजर में मजदूरों के ठेकेदार होते हैं। इन ठेकेदारों से प्रबंधन अपनी जरूरत के मुताबिक मजदूरों की आपूर्ति करने को कहता है और मजदूरों के श्रम का

भुगतान भी ए ठेकेदार ही करते हैं। बाद में ए ठेकेदार या दलाल, आप इन्हें जो भी संज्ञा दें, मजदूरों के भुगतान में हर तरह की बेईमानी करते हैं। नियोक्ता और श्रमिक के बीच दलालों की यह महत्वपूर्ण उपस्थिति मजदूरों के शोषण को दलाल मजदूरों का हक मारने में किसी तरह से गुरेज नहीं करते, उन्हें न्यूनतम दिहाड़ी देना तो दूर की बात है। मजदूरों का मारा गया हक ही इन दलालों के लिए मुनाफा है। ऐसी स्थिति में मजदूरों के प्रति किसी भी प्रकार की जिम्मेदारी, जैसे कि रहने और आराम करने के जगह की व्यवस्था, स्वास्थ्य सुविधाएं, बीमा, खाने के लिए भोजन और पीने के लिए पानी को सुलभ बनाना और दुर्घटनाओं के स्थिति में उपचार जैसी बातों से अमूमन नियोक्ता अपने आप को विमुख कर लेता है। नियोक्ता इन सब के लिए ठेकेदारों को जिम्मेदार बताता है तो ठेकेदार नियोक्ता को और ऐसे में मजदूर बेचारे बड़े बदतर स्थिति में इसी तरह खटते रहते हैं।

महानगरों में काम करने वाली घरेलू नौकरानियों का ही उदाहरण लें। गरीबी और भूख के साथ–साथ विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित हो रहे छत्तीसगढ़ और झारखंड के आदिवासी रोजी–रोटी के लिए इधर–उधर भटकते रहते हैं। ऐसे में आदिवासी लड़कियों को श्रम–दलाल महानगर ले आते हैं। उन्हें प्रशिक्षित करके दूसरों के घरों में घरेलू काम करने के लिए भेजा जाता है। इन घरों में ऐसी लड़कियों की स्थिति बंधुआ मजदूरों से ज्यादा नहीं होती। अठारह से बीस घंटे रोज मेहनत के बाद भी नियोक्ता का इनके साथ सलूक आमतौर पर गैरइंसानी ही होता है। इन के यौन शोषण की आशंका तो बनी ही रहती है। इतने प्रतिकूल परिस्थिति में भी इनके बंधुआ बने रहने का मुख्य कारण आजीविका के लिए विकल्पहीन होने के साथ–साथ नियोक्ता के चाहरदीवारी के बाहर की दुनिया से अनभिज्ञता भी है। मजबूरन अत्याचार सहते रहने के बाद भी घरेलू नौकरानियां अपने नियोक्ता के घर में कैद रह कर चुपचाप खटती रहती हैं, क्योंकि उनके पास और कोई विकल्प नहीं है।

श्रमिकों पर होने वाला शोषण यहां रूकता नहीं है। ईंट–भट्टों पर काम करने वाले मजदूरों में महिलाओं के साथ–साथ पुरूष और बच्चे भी काम करते हैं। इन्हें भी काम दिलाने वाले दलाल गांवो–जंगलों से कुछ रूपयों के बदले बहला फुसला कर काम करवाने के लिए लाते हैं। ईंट– भट्टों का काम एक मौसमी काम है। पूरे मौसम इन श्रमिकों के साथ बंधुआ के तरह ही व्यवहार किया जाता है और इन्हें न्यूनतम दिहाड़ी देने का चलन है ही नहीं। और तो और, अध्ययन के मुताबिक महिलाओं को लेकर यौन–हिंसा ईंट– भट्टों में होने वाली आम घटना है। ईंट– भट्टों में काम करने वाले मजदूरों की खस्ताहाल स्थिति पूरे देश में एक जैसी है।

हद तो तब हो जाती है, जब मजदूरों पर होता यह अन्याय एक तरफ सरकारों को सूझता नहीं दूसरी ओर, खुलेआम सरकार अपने कुछ योजनाओं के जरिए बंधुआ मजदूरी को प्रश्रय भी देती हैं। बतौर उदाहरण लें तो बंधुआ मजदूरी का एक स्वरूप तमिलनाडु में सरकार के प्रोत्साहन पर चल रहा है। बंधुआ मजदूरी का यह भयंकर कुचक्र सुमंगली थित्तम नाम की योजना के तहत चलाया जाता है। इस योजना को मंगल्या थित्तम, कैंप कूली योजना या सुबमंगलया थित्तम के नामों से भी जाना जाता है। इसके तहत सत्रह साल या कम उम्र की किशोरियां के साथ यह करार किया जाता है कि वह

अगले तीन साल के लिए किसी कताई मिल में काम करेंगी और करार की अवधि खत्म होने पर उन्हें एकमुश्त तीस हजार रूपए दिए जाएंगे, जिसे वे अपनी शादी में खर्च कर सकती हैं। तमिलनाडु के नौ से तेरह कपास मिलों में सैंतीस हजार किशोरियों इस योजना के तहत बंधुआ बनाई गई हैं। इनके बंधुआ होने का कारण यह है कि करार के अवधि के दौरान अगर कोई लड़की उसके नियोक्ता कपास मिल के साथ काम न करना चाहे और मुक्त होना चाहे तो उसकी पूरी कमाई को मिल प्रबंधन हड़प कर लेता है। साथ ही, कैंपों में रहने को विवश की गई इन लड़कियों के साथ बड़ा ही अमानवीय व्यवहार होता हैं। इन्हें बाहरी दुनिया से बिल्कुल अलग रखा जाता है, किसी से मिलने–जुलने की इजाजत तक नहीं होती है। एक दिन में अठारह घंटों का कठोर परिश्रम करवाया जाता है। हते में बस एक बार चंद घंटे के लिए बाजार से जरूरी खरीदरी करने की छुट मिलती है। इनके लिए न तो कोई बोनस है, न ही किसी तरह की बीमा योजना और न ही किसी तरह की स्वास्थ्य सुविधा। दरिंदगी की हद तो तब है, जब इन अल्पव्यस्कों को यौन उत्पीड़न का शिकार बनाया जाता है। हाल ही में एक खबर छपी थी कि शांति नाम की लड़की को ढाई साल मिल में काम के बाद भी बदले में एक कोड़ी नहीं मिली। उलटे, मिल के मशीनों ने उसे अपाहिज बना दिया और प्रबंधन का यह बहाना था कि दुर्घटना के बाद शांति के इलाज में उसकी पूरी कमाई खर्च हो गई।

बंधुआ मजदूरी के चक्कर में फंसने वाले ज्यादातर लोग या तो आदिवासी होते हैं या दलित। आदिवासियों का बंधुआ बनने का कारण उनके पारम्परिक आजीविका से उन्हें महरूम करना है। तमिलनाडु की एक जनजाति है इरूला। ये लोग पारम्परिक रूप से सपेरे रहे हैं, लेकिन सांप पकड़ने पर कानूनन प्रतिबंध लगने के बाद से कर्ज के बोझ तले दबे इस जनजाति के लोगों को बंधुआ की तरह काम करने के लिए अभिशप्त होना पड़ा। चावल मिलों, ईंट– भट्टों और खदानों में काम करने वाली इस जनजाति पर हर तरह के अत्याचार किए जाते हैं। तंग आकर जब रेड हिल्स के चावल मिलों में बंधुआ मजदूरी करने वाले लगभग दस हजार लोगों ने अपना विरोध दर्ज किया तो उन्हें मुक्त कराने के बजाए एक सक्षम सरकारी अधिकारी ने उन्हें नियोक्ता से कह कर कर्ज की मात्रा कम करवाने के आश्वासन के साथ वापस काम पर जाने को कहा। सरकारी मशीनरी की ऐसी भूमिका मिल मालिकों और अधिकारियों की सांठ–गांठ का प्रमाण है।

बंधुआ मजदूरी के पूरे मामले में एक बहुत बड़ा कारण आजीविका के लिए अन्य विकल्पों और अवसरों का उपलब्ध नहीं होना है। साथ ही, अब तक जो हालात दिखे हैं, उनके आधार पर सरकारी लालफीताशाही पर किसी तरह का भरोसा करना ठीक नहीं है। बंधुआ मजदूरी का तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण कारण स्थायी नौकरी के बदले दलालों के मध्यस्था में मजदूरों के श्रम का शोषण करने की रणनीति अंतर्निहित है। ऐसे में संसद और विधानसभा में बैठ कर उन्मूलन के कानून बनाने के अलावा सरकार को इसके पनपने और फलने–फूलने के कारणों पर भी चोट करना पड़ेगा।

साभार – जनसत्ता

A Step Towards a Unique Identity for All

Veena N. Madhavan

Recently, many of us must have read in newspapers or magazines about National Population Register (NPR).But what is NPR? What is its purpose? And above all how is it going to benefit the common man?

To know about National Population Register, it becomes essential to know something about Census. The first census in India was held in 1872. Since 1881, population censuses have been held every ten years without any interruption. Census is an administrative exercise carried out by the Government of India. It involves the collection of information about the entire population with regard to many factors like demography, socio-cultural and economic characteristics.

The 2011 Census of India will be the 15th census and seventh after Independence. A milestone in the 2011 Census is the preparation of the NPR. The census will be carried out in two phases. The first phase spans from April to September 2010 with house listing, house census and collection of data on NPR. This phase also involves the canvassing of NPR schedule which will be digitized in two languages - English and the official language of every State/Union Territory. The first phase will commence on April 1, 2010 in the states of West Bengal, Assam, Goa and Meghalaya and the Union territory of Andaman and Nicobar Islands. The second phase includes the population enumeration stage.

The creation of NPR of usual residents of the country is an ambitious project. It involves the collection of specific information on each person residing in the country. It would cover an estimated population of 1.2 billion and the total cost of the scheme is Rs.3539.24 crores. This is for the first time that NPR is being prepared. The database will be built by the Registrar General, India. At this juncture, it becomes important to stress that census and NPR are different, even though the basic idea behind both the exercises is collection of information.

Census is the biggest source of data on demography, literacy and education, housing and household amenities, economic activity, urbanization, fertility, mortality, language, religion and migration. It serves as primary data for planning and the implementation of policies of the Central and State Governments. Also, it is utilized for the purpose of reservation of constituencies for Parliamentary, Assembly and local body elections.

NPR on the other hand, involves the creation of a comprehensive identity database for the country. This would facilitate planning, better targeting of government schemes/programmes and also strengthen the security of the country. Another aspect that differentiates NPR from census is that it is a continuous process. In census, the duty of concerned officers is for a limited period and their services are dispensed with after the work is over, while in the case of the NPR, the role of concerned officers and that of subordinate officers like the Tehsildar and Village Officers is of continuing nature and permanent.

NPR will include the items of information such as the name of the person, father's name, mother's name, spouse's name, sex, date of birth, place of birth, current marital status, education, nationality as declared, occupation, present address of usual resident and permanent residential address. The database will also contain photograph and finger biometry of persons above the age of 15 years. The draft Local Register of Usual Residents

(LRUR) would be displayed in the villages in rural areas and wards in urban areas for inviting objections like spellings in names, address, date of birth etc. and also regarding residency status of any person enumerated. The draft LRUR will also be placed before the Gram Sabha or local bodies for authentication of usual residents.

Once the database is finalised, the next task would be assigning every individual a Unique Identification Number (UID) by the Unique Identification Authority of India (UIDAI). Later this UID number will be added to the NPR database. It is proposed to issue identity card, which will be a smart card with UID number printed on it and include basic details like name, mother's/father's name, sex, date and place of birth, photograph. Complete details will be stored in the chip.

The implementation of NPR in the entire country would be based on the light of the experience gained from the pilot project, the coastal NPR project. The pilot project was carried out in selected border areas of the country. The coastal NPR project is being carried out in more than 3300 villages in 9 states and 4 Union territories. The decision to implement coastal NPR project was taken by keeping in view the enhancement of coastal security.

How NPR would benefit people?

In India, there are several databases like election card, driving license, passports, PAN cards, but all these have limited reach. There is no standard database covering the entire population. NPR would provide a standard identity database and facilitate the allotment of Unique Identification (UID) Number to each individual, something like a permanent identifier - right from birth to death of the individual.

The significance of NPR lies in the fact that there is an increasing need for a credible identification system for the country as a whole. It becomes all the more important because of various factors such as the need to reach out to people in every nook and corner of the country, to keep a check on illegal migration and also with regard to the issue of internal security.

The coming in of a unique identification number would benefit the common man in many ways. It will strike off the need for producing multiple documentary proofs of identity by an individual for availing government or private services like opening of a bank account. It will help in the easy verification of an individual. The creation of an identity database would help enhance the targeting of various beneficiary oriented schemes of the Government and non governmental agencies. NPR would also serve the requirement of sprucing up tax collection.

India has already set the process rolling to create the largest database in the world, with the promise of a unique biometric card to an estimated population of 1.2 billion. Thus the path towards providing a unique identity has been set out. The enormity of the exercise is such that it requires the undaunted support and cooperation of people in making the project a success that would be beneficial to every resident in the country.

(Courtesy PIB)

❍❍❍❍❍

हमारे लेखक

रेनू गौतम
प्रवक्ता–गृह विज्ञान,
बिड़ला परिसर,
हे0न0ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर गढ़वाल,
(उत्तराखण्ड)

रमेश दवे
एल. आई. जी.
276, कोटरा,
सुल्तानाबाद, भोपाल (म.प्र.)

विमला लाल
353, विकास कुंज
विकास पुरी
नई दिल्ली – 110018

शिवप्रकाश कटियार
बी– 254, पटेल नगर – 2
गाजियाबाद –201001
(उत्तर प्रदेश)

संगीता पवार
अंशकालिक प्रवक्ता (शिक्षा विभाग)
एस.एस.जे.कैम्पस, अल्मोड़ा
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल
(उत्तराखण्ड)

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ

कार्यकारिणी समिति

संरक्षक

प्रो. भवानीशंकर गर्ग

अध्यक्ष

श्री कैलाश चौधरी

उपाध्यक्ष

श्रीमती राजश्री बिस्वास
प्रो. ए.एच. खान
प्रो. अरूण मिश्रा
डा. एल. राजा
प्रो. एस.वाई. शाह

महासचिव

डॉ. मदन सिंह

कोषाध्यक्ष

डा. मनोहर सिंह राणावत

संयुक्त सचिव

श्री ए.एल. भार्गव

सह–सचिव

श्री सुधीर चटर्जी
श्री प्रफुल्ल नागर
डॉ. पी.ए. रेड्डी
डॉ. निर्मला नुवाल

सदस्य

श्रीमती इन्द्रा पुरोहित
सुश्री कुन्दा सुपेकर
श्रीमती सुरेखा खोत
प्रो. सुशीले गौडा
डॉ. मफतलाल पटेल
प्रो. वी. रेघु
डॉ. एस.एल. शर्मा
डॉ. ओ.पी.एम. त्रिपाठी

सहयोजित सदस्य

श्री एच.सी. पारीख
प्रो. सुरेन्द्र सिंह
सुश्री निशात फारूख़
श्री हरीश कुमार एस.
श्री सुरेश चन्द्र खण्डेलवाल

पोस्टल रजिस्ट्रेशन नं0 डी.एल.(सी)-01/1158/10-12
प्रौढ़ शिक्षा मई 2010, आर.एन.आई. 4551/57

I measure the progress of a community by the degree of progress which women have achieved.

-B. R. Ambedkar

स्वत्वधिकारी भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ के लिए महासचिव डा. मदन सिंह द्वारा 17–बी आई.पी. एस्टेट, नई दिल्ली–2 से प्रकाशित, सम्पादित और उनके द्वारा मैसर्स– ग्राफिक वर्ल्ड, 1686, कूचा दखिनी राय, दरियागंज, नई दिल्ली–2 से मुद्रित।

वर्ष 53 अंक 10

एक प्रति 10 रूपये
मई 2010

प्रौढ़ शिक्षा

प्रौढ़, सतत एवं आजीवन शिक्षा जगत का मुख पत्र

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ